टूटे पुल

टूटे
पुल

वे अनिश्चय के क्षण थे।

—निश्शब्द ड्राइंग-रूम में घूमते हुए सीलिंग फैन की आवाज सुनते हुए जानकीप्रसाद परेशानी का अनुभव कर रहे थे। वे तीन बार पहलू बदल चुके थे और अब तक सोफे पर एक निश्चित, विचारपूर्ण मुद्रा अख्तियार कर चुके थे। उन्होंने पीठ सोफे से टिका ली और बाएँ पैर पर दायाँ पैर रख लिया। दोनों हाथों से मुड़ी हुई टाँग को घेरकर उन्होंने घुटने के आगे हथेलियाँ फँसा ली थीं और अब पैर के पंजे को वे हौले-हौले ऊपर-नीचे हिला रहे थे। अपनी छड़ी को उन्होंने बगल में ही सोफे से टिका लिया था। चारों दीवारों का मुआयना कर चुकने के बाद वे सामने की दीवार और सीलिंग की सन्धि की ओर देख रहे थे।

उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वे बात किस तरह प्रारम्भ करेंगे। वे यह भी अनुभव कर रहे थे कि नाजुक मामले में सहानुभूति प्रकट करना कितना कठिन कार्य है। अभी भी वे अपने को अन्दर ही अन्दर तैयार कर रहे थे कि पर्दा हिला और डाक्टर मेहता ड्राइंग-रूम में आ गये। उन्होंने नाइट सूट पर गाउन पहन रखा था और उनके बाल बिखरे हुए थे। अपनी आदत के अनुसार उन्होंने सिगरेट ओठों में दबा रखी थी। उनकी आँखों में लाल डोरे थे और माथे पर बल। वे बिना कुछ बोले जानकीप्रसाद के सामने के सोफे पर बैठकर सिगरेट के कश लेने लगे। जानकीप्रसाद ने अपनी मुद्रा बदली और सजग होकर सीधे बैठ गये। उन्होंने डाक्टर मेहता को नमस्कार किया जिसका उत्तर डाक्टर ने बिना बोले केवल सिर हिलाकर दिया।

जानकीप्रसाद को लगा कि कमरे में और भी अधिक नीरवता छा गई है और पंखे की आवाज पहले से कहीं अधिक तेज हो गई है। उन्होंने डाक्टर की ओर देखा और गला साफ किया। वे थोड़ा आगे झुके और वेवजह अपनी हथेलियों को देखने लगे। कुछ क्षणों के वाद बुजुर्गी से सिर हिलाते हुए उन्होंने संजीदगी से कहा, "आखिर नलिनी और विनोद को क्या सूझा यह ! इतनी समझदार लड़की…क्या कहते हैं…ऐसी नादानी कर वैठी ! ! —यानी कि वताओ भला।"

डाक्टर मेहता जल्दी-जल्दी सिगरेट के कश लेते हुए कारपेट की ओर देखते रहे। जानकीप्रसाद थोड़ी देर असमंजस में रहे फिर धीरे से वोले, "मुझे जैसे ही मालूम हुआ मैं…"

"अगर मेरी लड़की भाग गई है तो आपको क्या लेना-देना ?" डाक्टर मेहता के गुर्राये हुए कठोर स्वर ने पत्थर की तरह जानकीप्रसाद की चेतना पर चोट की। उनकी आँखें आश्चर्य से फैल गईं और वे अचकचाकर डाक्टर की तरफ देखने लगे। डाक्टर की स्वाभाविक तौर पर विकृत रहने वाली भृकुटियाँ इस समय और भी टेढ़ी हो गई थीं और उनके नथुने आवेश में फड़क रहे थे। जानकीप्रसाद समझ नहीं पा रहे थे कि ऐसी क्या वात हो गई कि हवन करते हुए उनके हाथ जलने की नौवत आ गई। उन्होंने आँखें झपकाकर केवल इतना कहा, "जी…मैं मतलव नहीं समझा !"

"मतलव नहीं समझा", डाक्टर ने गुस्से से थरथराते स्वर में उनकी नकल की। उन्होंने सिगरेट ऐशट्रे में मसल दी और सोफे से उठकर, दरवाजे की तरफ उँगली दिखाकर वे चीख उठे, "निकल जाओ, चलो यहाँ से। मुझे ये चिकनी-चुपड़ी वातें नहीं सुननी हैं।" उनके गोरे चेहरे पर जैसे शरीर का सारा रक्त सिमट आया था। उनकी मुट्ठियाँ आवेश में वँध गई थीं और उनकी मुद्रा यूँ हो गई थी जैसे उन पर हिस्टीरिया का दौरा पड़ गया हो।

जानकीप्रसाद का चेहरा अपमान से काला पड़ गया। उनकी समझ

मे नहीं आ रहा था कि इस स्थिति को वे किस तरह झेलें। वे तय नहीं कर पा रहे थे कि डाक्टर की इस प्रतिक्रिया को वे दुख का आवेग समझें या उनकी बदतमीजी। वे डाक्टर मेहता के साढ़ू भाई थे। जब उन्हें मालूम हुआ था कि नलिनी घर से भाग गई है तो वे डाक्टर को धीरज बंधाने चले आये थे। यूँ डाक्टर के विचित्र स्वाभाव से वे खूब परिचित थे किन्तु उनके साथ डाक्टर के सम्बन्ध बहुत ही अच्छे थे और फिर सबसे बड़ी बात थी कि ऐसे समय मे उनका कर्तव्य क्या है इसे वे जानते थे। अपनी भावनाओं पर काबू रखते हुए वे धीरे से उठे और उन्होंने डाक्टर के कन्धे पर हाथ रखा, "सुनिए डाक्टर, धीरज से काम लीजिए। क्या कहते हैं..."

डाक्टर ने उनके हाथ को झटक दिया और वैसे ही उग्र स्वर में कहा, "मुझे कुछ नहीं सुनना है और न ही मुझे किसी से कुछ कहना है।"

अब जानकीप्रसाद के लिए यह प्रकरण असह्य हो उठा था। उनके हृदय की सहानुभूति एकाएक लुप्त हो गई और उन्होंने नाक से हवा निकालते हुए कहा, "हूँ—!" डाक्टर को गुस्से-भरी दृष्टि से ऊपर से नीचे तक उन्होंने देखा, अपनी छड़ी उठाकर झटके से मुड़े और कमरे से बाहर निकल गये।

"उँह—मेरा मजाक उड़ाने आया था।" डाक्टर दाँत पीसते हुए बड़-बड़ाये। तेज कदमों से चलते हुए वे दरवाजे तक गये और उन्होंने बाहर झाँका तो उन्हें लगा कि सड़क पर चलने वाला हर आदमी उनकी ओर देखकर व्यंग्य से हँस रहा है। उन्होंने भड़ाक से दरवाजा बन्द कर दिया। आवाज को सुनकर भीतर से सावित्री तेजी से निकली। आश्चर्य से उसने पूछा, "क्या बात हुई ?"

"हुआ तुम्हारा सिर," पत्नी को देखकर डाक्टर मेहता का क्रोध दुगने वेग से उमड़ पड़ा। "तुम्हारी लाड़ली ने खूब इज्जत बढ़ाई है मेरी। और यह सब कुछ हुआ है तुम्हारे विनोद के कारण।" डाक्टर मेहता को लग रहा था कि सामने खड़ी स्त्री ही इस काण्ड के लिए जिम्मेदार है।

उनकी इच्छा हो रही थी कि आगे बढ़कर उसका गला घोंट दें।

सावित्री का गोरा चेहरा दुख और मानसिक तनाव से मलिन था फिर भी अपने को सँभालते हुए, उनके पास जाकर वह धीरे-से फुस-फुसाई, "जो कुछ हुआ···वह तो खैर गलत हुआ ही पर आप इतनी जोर से चीखकर मुहल्ले में तमाशा क्यों बनना चाहते हैं।"

"उपदेश मत पिलाओ। तमाशा जो बनना था वह तो बन ही चुका है। कोई कसर बाकी है?" डाक्टर ने गुर्राकर उसकी तरफ देखा, "मैं जानता हूँ यह सब तुम्हारी शह पाकर हुआ होगा।"

"कैसी बातें कह रहे हैं? मेरी शह से क्यों हुआ होगा? मैं क्या अपनी लड़की की दुश्मन हूँ?"

'विनोद तो तुम्हारा बड़ा लाड़ला था। पहले अगर मालूम होता कि यह लड़का मेरे एहसानों का यह बदला देगा तो उसे लात मारकर घर से निकाल देता। उँह।"

"जरा समझदारी से काम लीजिए", सावित्री ने उसी तरह फुसफुसाते हुए स्वर को तेज बनाया और दो कदम आगे बढ़कर कहा, "ऐसा कहते हुए···"

इसके पहले कि वह कुछ बोल पाती, डाक्टर ने पत्नी को धक्का देकर हाथ घुमाया—ईडियट—हरामजादी। सावित्री लड़खड़ाई और उसका सिर बगल की दीवार से जोरों से टकराया। उसे लगा कि वह चक्कर खाकर गिर जायेगी। उसने एक हाथ से दीवार और दूसरे हाथ से बगल की टेबल को थाम लिया। डाक्टर अभी भी क्रोध से थर-थर काँप रहे थे और उनकी साँस तेजी से चल रही थी। पत्नी को धक्का देकर भी उनका मन भरा नहीं था इसलिए वे फिर अपनी पत्नी की ओर बढ़े।

सावित्री का सिर अभी भी चकरा रहा था। आधी मुँदी आँखों से उसने डाक्टर को अपनी तरफ बढ़ते देखा तो अचानक उसने टेबल पर रखे बड़े फ्लावरपाट को उठा लिया। उसे तानकर, उसने चुनौती-भरे

स्वर में चीखकर कहा, "जरा बढ़कर देखिए। बहुत हुआ, अब मैं आपकी ज्यादतियाँ नहीं सह सकती। बढ़कर देखो'''आज कोई काण्ड होकर रहेगा।"

डाक्टर भमककर खड़े हो गये। भभकती आग पर जैसे ठण्डा पानी पड़ गया था। आश्चर्य और अविश्वास से उनकी आँखें फैल गईं। वे पत्थर के बुत की तरह खड़े होकर सावित्री की तरफ देखने लगे जैसे विश्वास करना चाहते हों कि यह सावित्री ही है। उन्हें लगा कि यदि वे आगे बढ़े तो सावित्री सचमुच उन पर वार कर बैठेगी। सावित्री के ओठ थरथरा रहे थे और आँखें आवेश से चमक रही थीं। दोनों ही कुछ क्षणों तक इस मुद्रा में खड़े-खड़े एक-दूसरे को तोलते रहे। कमरे में समय थम गया था। डाक्टर ने जेब से पैकेट निकालकर सिगरेट सुलगाई और अविश्वास-भरी दृष्टि से सावित्री की ओर देखा, फिर वे मुड़कर धीरे-धीरे कमरे से बाहर निकल गये।

बाहर जाते हुए डाक्टर के पदचाप और गाड़ी के रवाना होने की आवाज में जब सावित्री चौंकी तो उसने जाना कि वह उसी मुद्रा में जाने कब से खड़ी थी। उसने अपने हाथ के फ्लावरपाट को शून्य दृष्टि से देखा जैसे उसे पहचानने का प्रयास कर रही हो। क्या करने जा रही थी वह? तो, परिस्थितियों ने उसे तोड़-मरोड़कर इस अनजाने मुकाम पर ला पटका है। सभी कुछ अजीब ढंग से घट रहा है, इतनी तीव्र गति से कि एक-दूसरे के साथ घटनाओं की संगति बैठाना उसके लिए कठिन हो रहा था। बचपन से सती सावित्री बनने का स्वप्न देखने वाली सावित्री आज इस रूप में आ गई! उसने हाथ का फ्लावरपाट खींचकर सामने की दीवार पर दे मारा। डाक्टर मेहता का बड़ा फोटो और काँच का फ्लावरपाट—दोनों ही भनभनाकर फर्श पर बिखर गये। सावित्री को लगा कि उसके शरीर की सम्पूर्ण शक्ति शेष हो गई है। भरभराकर वह पास की कुर्सी पर बैठ गई और उसने अपना चेहरा हाथों से छिपा लिया। आन्तरिक आवेग के विस्फोट से उसका शरीर

हिचकोले खाने लगा। जीवन आकाश की तरह है—विस्तृत और रहस्यमय।

आकाश के असीम विस्तार की तरह उसके भी कितने ही कोने अन-देखे, अनजाने रह जाते हैं, फिर भी बादलों के आर्द्र टुकड़े और गुनगुनी धूप जैसे कुछ मुकाम भला कोई भूल सकता है? आकर्षण—विकर्षण, प्रेम और घृणा की कितनी ही अमराइयों ने इसकी समग्रता को खण्डित कर जितनी भ्रमपूर्ण क्षितिज रेखा का निर्माण कर दिया है उतना ही व्यक्ति का आकाश है। शेप अनदेखा विस्तार होकर भी नहीं होने की तरह है। इसी क्षैतिज आभास के बीच स्मृतियों के मण्डल में मन की चीज उड़ान भरती है तो कितनी कटावदार पगडंडियाँ और कुंजों के बीच छिपे हुए पोखर दिखलाई पड़ने लगते हैं।

···अनजानी ऊंचाइयों का मोह···

बारात अभी-अभी दरवाजे पर नहीं आई थी पर बैण्ड पार्टी की आवाज सुनकर बूढ़ियों से लेकर बच्चियाँ तक बटलोही में उबलते भात की तरह खदबदा गई थीं। कुछ क्षणों पूर्व ही भयानक चिल्लपों के बीच भी, बगल के कमरे में ढोलक की थाप के साथ औरतें गा रही थीं—बेला फूल की कली···कचनार की कली···बन्ना सोवै री अटारी···गीत की कड़ी भी उन्होंने पूरी नहीं की थी और ढोलक फेंककर वे भाग खड़ी हुई थीं! स्वयं सावित्री की सहेलियाँ, जो उससे बातें कर रही थीं—चल री···अरे चल जल्दी—कहते हुए यह जा, वह जा हो गयी थीं और वह कमरे में बिलकुल अकेली रह गई थी। उसने हल्की-सी अँगड़ाई ली और आँखें घुमाकर कमरे के चारों ओर देखा।

एक दीवार से लगकर दहेज का सामान सजा हुआ था। बीच में था एक बड़ा ड्रेसिंग टेबल। आईना वैसे भी नफासतपसन्द सावित्री की कमजोरी था। इस समय तो वह उसे चुम्बक की तरह खींच रहा था। उसका मन रह-रहकर मरोड़ खा रहा था कि इस नये शृंगार को देखें। ऐसा परम्परागत पूर्ण शृंगार जो जीवन में दूसरी बार धारण ही नहीं

किया जाता। किन्तु उसे विचित्र-सा संकोच हो रहा था और इस बात का भय भी कि अचानक यहीं कोई आ न टपके। पर मन की कुलबुली थी कि बढ़ती ही जा रही थी। अन्त में एक बार दरवाजे की ओर दृष्टि डालकर वह उठी और आईने के सामने खड़ी हो गई। अपना रूप देखकर कुछ देर तक उसे विश्वास ही नहीं हुआ कि यह वही है! ना जाने ऐसी कौन-सी बात उसमें आ गई थी जिसने उसके रूप को यों निखार दिया था!! उस निखार का सम्बन्ध केवल कपड़ों और गहनों से नहीं था। वह कोई अन्दरूनी आभा थी जिसने उसके व्यक्तित्व में कोई न पकड़ में आने वाली चमक भर दी थी। वह शायद अपने को देखती ही रहती पर आईने में अपने पीछे अपनी सहेली नीला की परछाईं देखकर वह चौंकी। नीला ने पीछे से आकर उसे बाँहों में बाँध लिया और बोली, "अरे बिन्नो, अपना रूप देखकर खुद ही मोहित हो रही है!"

"मैं तो उठकर जरा टहल रही थी बैठे-बैठे पाँव अकड़ गये।" उसने कमजोर-सा बहाना किया।

"अरे रहने दो बिट्टो, बुजुर्गों से झूठ नहीं बोलते। इस दिन सभी की इच्छा आईना देखने की होती है। मालूम है, सुहागरात के बाद भी सुबह आईना देखने की इच्छा होती ही है। देख लेना, तुझे उस समय भी लगेगा कि कहीं कुछ अनोखा परिवर्तन हो गया है। मगर ये समझ में नहीं आयेगा कि क्या बदल गया है!"

"हाँ, हाँ, तुझे लगा होगा तो तू समझ रही है कि सारी दुनिया को लगता होगा।" सावित्री ने टोह लेने की कोशिश की।

"भई मुझे तो लगा था।" नीला ने सिर एक तरफ झुकाया और दाहिने हाथ को गौतम बुद्ध की मुद्रा में उठाया। फिर उसने सावित्री की बाँह पकड़ी और उसे फिर कालीन पर बिठा दिया। उसके सामने पालथी-पालथी मारकर बैठते हुए नीला ने कहा, "भई, देख लिया तेरे दूल्हे को। खूब गोरा है। उसके सामने तू भी साँवली लगेगी। [illegible]
फोटो-ओटो देखा है या नहीं?"

"नहीं देखा", सावित्री शरमायी।

"हां...वैसे भी क्या जरूरत है फोटो देखने की। भई, तुम लोग तो एक-दूसरे को इस तरह देखोगे कि कोई उस तरह देख ही नहीं सकता। दो रात की तो बात है।"

"चल हट", सावित्री मुस्कराते हुए शरमाई।

"अरी हां बिन्ना। औरत की बात तो छोड़, पर मर्द तो औरत को किसी उपन्यास की तरह एक-एक पृष्ठ खोलकर पढ़ता है। घूंघट से खोलना शुरू करता है तो फिर बस, खोलता ही जाता है।"

"चल हट, बेशरम", सावित्री ने चिकोटी काटी।

"लो—झूठ कहो तो जालिम जमाना झूठा कहता है और सच कहो तो बेशरम। जब तक डबल बेड नहीं देखा है बिन्ना, तब तक ही छुई-मुई रहोगी। एक बार जब पति तेरे भूगोल का पूर्ण सर्वेक्षण कर... हाय, चुड़ैल इतनी जोर से चिमटी अपने खसम को काटना।" नीता अपना पांव सहलाने लगी।

"तू बहुत बदजबान हो गई है ससुराल जाकर।"

"खैर छोड़ ये बातें। दूल्हा तेरा अच्छा है। सुना है थ्रू आउट फर्स्ट क्लास फर्स्ट है! भाग्यशाली है तू कि इतना अच्छा डाक्टर पति मिला है तुझको।"

उधर औरतें द्वारचार की रस्म देखने में जुटी हुई थीं और इधर एकान्त कमरे में नीता सावित्री को दाम्पत्य जीवन का रहस्य सिखलाकर गुरु-मन्त्र दे रही थी। वह समझा रही थी कि घूंघट खोलने के पहले काश्मीर की हनीमून का वायदा ले लेना। सावित्री तो बस हंस रही थी या शरमा रही थी। इसी हंसी-खुशी के बीच न जाने कब घर छोड़ने का दुःख उमड़ा और वह नीता के कन्धे पर सिर रखकर रोने लगी।

...नीरव आकाश का एकाकीपन...

मुंहदिखाई की रस्म में बैठे-बैठे सावित्री थक चुकी थी किन्तु आसन्न क्षणों की मादक प्रतीक्षा उसे चैतन्य बनाये हुए थी। मुंहदिखाई

के बाद उसने अच्छी तरह हाथ-मुंह धोकर अपने को ताजा दम कर लिया था। रिश्ते की ननद-भाभियों तथा अड़ोस-पड़ोस की लड़कियों ने मिलकर उसे दुबारा सजा दिया था। समयोचित शृंगार उसके मन मे गुदगुदी पैदा कर रहा था। इस बार उसे हलकी झीनी साडी पहना दी गई थी और ढेर-सी फूलमालाएँ उसके भारी जेवरों का स्थान ले चुकी थी। जाने-अनजाने संकेतों से भरी भाषा मे लड़कियाँ उससे हँसी-ठिठोली करती रहीं और फिर उन्हे उसे शयन-कक्ष मे लाकर छोड़ दिया था। लड़कियों के चले जाने के बाद वह कमरे में इधर-उधर चहलकदमी करती रही। आईने के सामने पहुँचकर वह शरमा गई थी। जल्दी से आईने के सामने से हटकर वह पलँग पर पाँव मोड़कर बैठ गई थी। कमरे का हलका नीला प्रकाश वातावरण को रेशमी बनाये हुए था। कमरा अगर-बत्ती की सुगन्ध और उसकी मालाओं में गुँथे बेले के फूलों की भीनी महक से भरा हुआ था। पलँग की मसहरी के फ्रेम से ढेर-सी फूलमालाएँ लटक रही थी। कमरे की बडी खिडकी के नीले पर्दे हलकी हवा मे हिल रहे थे। हवा मे उतर आई खुनक से आभास हो रहा था कि रात काफी ढल चुकी है।

उसे सब कुछ बहुत अच्छा लग रहा था। आत्मीयता और निजता से पूर्ण। वह निरन्तर प्रयास कर रही थी कि अपने हृदय की धड़कन पर काबू पा सके किन्तु धड़कन थी कि बढ़ती जा रही थी। उसके मन मे एक अनजाना आनन्द और संशय एक ही साथ मचल रहे थे। मस्तिष्क मे सहेलियों से सुने हुए किस्से, उपन्यासों में पढ़े हुए वर्णन और फिल्मों के दृश्य रह-रहकर घूम रहे थे। ओठो पर बरबस हँसी मचलती थी किन्तु दूसरे ही पल आगामी क्षणों की रहस्यमयता और अनिश्चितता उसके मन को संशय से भर देती। उसे नीता की कही हुई बात याद आ रही थी—मर्द तो औरत को किसी उपन्यास की तरह एक-एक पृष्ठ...

उढ़के हुए दरवाजे के खुलने की हल्की आवाज से वह सजग हो गई। उसके सारे शरीर मे बिजली-सी कौंध गई और उसे लगा कि उसकी

बात का खूँटा पकड़कर कहा।

डाक्टर ने गम्भीरता कायम रखते हुए कहा, "आपको मालूम है, अभी-अभी अमरीकी हृदयरोग विशेपज्ञों के एक संघ ने नई खोज की है कि हाई ब्लडप्रेशर की बीमारी कपड़े पहनने वालों को अधिक होती है। मेरीलैण्ड में नंगे रहने वालों में हाई ब्लडप्रेशर का रोग नहीं है। तो, डाक्टरों की इस सलाह को मानकर आप नंगे रहेंगे क्या ?"

मुरारीलाल क्षण-भर हतप्रभ हुए फिर तुरन्त सिर झुकाकर, मुण्डी हिलाते हुए हीं—हीं—हीं करके हँसने लगे। अपनी जाँघों पर दोनों हथेलियाँ पटककर बोले, "वाह, क्या बात है जीजाजी। मजाक बहुत बढ़िया करते हैं आप।"

जानकीप्रसाद मुरारीलाल की मुद्रा का आनन्द लेकर हँसना चाहते थे किन्तु डाक्टर के माथे पर बल पड़ते देखकर चुप रह गये। डाक्टर कुछ बोलने को हुए ही थे कि इतने में कमला ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा, "चलिए, थालियाँ परस गई हैं।"

जानकीप्रसाद ने सन्तोप की साँस ली। उठते हुए उन्होंने कहा, "चलिए, भोजन करते हुए ही बातें होंगी।"

डाक्टर ने एक बार अपनी आधी सिगरेट को देखा फिर जल्दी-जल्दी दो कश खींचकर उसे ऐशट्रे में मसल दिया।

किचन से लगे हुए भीतरी बरामदे में वे पहुँचे ही थे कि डाक्टर पर दृष्टि पड़ते ही नलिनी और संदीप का चहकना बन्द हो गया और वे एकाएक गम्भीर हो गये। बच्चों में एकाएक आया यह परिवर्तन इतना आकस्मिक था कि सभी का ध्यान उस ओर गया। जानकीप्रसाद ने बच्चों के गाल को सहलाकर कहा, "अरे, चुप क्यों हो गये तुम लोग ? अच्छा, अब तुम लोग भी खाने बैठो।"

बरामदे में ही दरी बिछाकर उसके सामने पीढ़े रखकर थालियाँ परस दी गई थीं। कमला ने किचन की ओर बढ़ते हुए सावित्री से कहा, "दीदी, तुम भी बैठ जाओ ना।"

बहुप्रतीक्षित नये अनुभव के रस से अच्छी तरह परिचित होने के लिए, वह उत्तेजना पर काबू पाना चाहती थी कि उसने अनुभव किया कि दो उत्तेजित हाथों ने उसकी गोलाइयों को मसलना शुरू कर दिया है। सावित्री के हाथों ने अनजाने ही उन्हें बरजा तो वे आतुर हाथ और भी कस गये तथा डाक्टर के ओठों से एक विरक्ति-भरी आवाज निकली—उँह—।

सावित्री की आँखें थोड़ी-सी खुली तो एक भुका हुआ चेहरा उसे दिखलाई दिया। ओठों के ऊपर कटी-छटी मूँछें, तीखी नाक और दो बड़ी-बड़ी काली आँखें। पर क्या था उन आँखों में? सावित्री को लगा कि उसकी दृष्टि रेत के बगूलों से ढके किसी रेगिस्तान में दूर तक पसर गई है जहाँ न तो कहीं कोई जलधारा है और न ही हरे-भरे निकुंज! उसने घबराकर आँखें बन्द कर ली। अपनी सहज प्रक्रिया में उसके कुंवारे हाथों ने फिर उन जल्दबाज हाथों को पकड़ने का प्रयास किया तो उसे वही खनकता हुआ खीझ-भरा स्वर फिर सुनाई दिया, "क्या तमाशा है?"··· उस आवाज ने सावित्री की चेतना को शून्य कर दिया। उसके हाथों में अब विरोध की हिम्मत नहीं रह गई थी और न आलिंगन की आकांक्षा। तभी उसने अनुभव किया कि वह पुस्तक की तरह खुल रही है—किन्तु अश्लील चित्रों की पुस्तक की तरह—जो माँगकर लाई जाती है और जल्दी-जल्दी पलटकर फेंक दी जाती है।

सावित्री देर तक जागती रही किन्तु उसके कौमार्य रस की पहली धार चखकर डाक्टर मेहता नींद की गोद में चले गये। सावित्री ने सिर घुमाकर देखा। डाक्टर का आधा चेहरा तकिये में छिपा था और उनके हलके खुर्राटों की आवाज सुनाई पड़ रही थी। सावित्री बिना हिले-डुले बेजान लकड़ी के लट्ठे की तरह पड़ी रही क्योंकि डाक्टर का एक हाथ अभी भी उसकी अनावृत्त छातियों पर था। सावित्री की आँखों में आँसू छलछला आये। एक भारी साँस लेकर उसने मन ही मन कहा, 'हे ईश्वर, अभी तो सारा जीवन पड़ा है।"

रस-भरी बातें, प्यार-भरी बाँहें और मीठे चुम्बनों के टूटे सपने

काँच की किरचों की तरह गड़ रहे थे !

···सम्पाती के जले हुए पंख···

डिलीवरी घर में हुई थी। सावित्री प्रसन्न थी कि पहली
लड़का है। पलंग पर अपनी बगल में लेटे हुए, सफेद कपड़े में लिप
को वह बार-बार देख लेती थी। बच्चे के नाक-नक्श को देख
अनुमान करने का प्रयास कर रही थी कि उसका चेहरा डाक्टर से
है या उससे। उसके मन के किसी कोने में यह आकांक्षा करवट
थी कि बच्चा उसकी अनुहार हो। किन्तु अभी तक वह कुछ भी
नहीं लगा पाई थी। अभी यहाँ चार-छः बूढ़े लोग होते तो बच्चे के
नाक, कान, कान तो क्या बाल और पीठ तक का हिसाब-किताब क
कि क्या किससे मिलता है। इतना ही नहीं वे तो तीन पीढ़ियों तक
से मिलान कर देते। अजीब होते हैं बूड्ढे भी—उसने सोचा। गप
होंगे या फिर कुछ बोलने के लिए ही बोलते होंगे। भला दो दिन
के नाक-कान का कोई ठिकाना होता है। उसकी इच्छा हो रही थी
मसलकर बच्चे को प्यार करे किन्तु इस गुलगुले शरीर को छूने में
डर लग रहा था। वह छत को देखते हुए बच्चे का नाम सोचने

दरवाजे पर आहट हुई तो बिना सिर घुमाये वह जान गई कि
अस्पताल से लौटे हैं। पंजों पर बल देकर, एक स्थिर गति से चल
नपे हुए कदमों की आवाज को वह खूब पहचान गई थी। उ
आते ही उसे लगा कि कमरे की हवा भारी हो गई है और उस
अस्वाभाविक गति से चलने लगी है। डाक्टर सहज ढंग से चलते
और बिना बोले सावित्री की नब्ज देखने लगे। सावित्री ने अप
नब्ज पकड़े हुए डाक्टर के हाथ पर टिका दी। यह नितान्त अन्वे
स्पर्श। डाक्टर ने अपनी खनकती आवाज में पूछा, "टानिक लि

"जी !" सावित्री ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

सावित्री को देखकर डाक्टर सिरहाने की तरफ से पलंग क

डाक्टर पलंग की पाटी पर बैठकर बच्चे को देखने लगे। स्टैथस्कोप कानों में लगाकर उन्होंने बच्चे के सीने का परीक्षण किया और फिर स्टैथस्कोप गले में लटका दिया। सावित्री ने चोर-नजरों से डाक्टर की ओर देखा। वही पेशानी पर बल, चढ़ी हुई भौंहें, शून्य आँखें और कसे हुए ओंठ। तो···पिता बेटे का नहीं बल्कि डाक्टर एक मानव-शरीर का मुआयना कर रहा है। अचानक सावित्री को लगा कि डाक्टर की शून्य आँखों के मरुस्थल में उसने बहुत दूर एक क्षीण रेखा उभरते देखी है। सावित्री पहले भी कई बार उन आँखों की जड़ता को तोड़ने का प्रयत्न कर चुकी थी। इस समय भी मौके का लाभ उठाकर उसने कोमल स्वर में पूछा, "बच्चे का नाम क्या रखेंगे?"

"कुछ भी रख लेंगे। जल्दी क्या है?" डाक्टर ने कुछ लापरवाही से कहा।

"बच्चे की सूरत किस पर गई है?" सावित्री ने प्रयत्नपूर्वक मुस्करा-कर कहा।

"क्या?" डाक्टर ने उसे अजीब नजरों से देखा, "क्या ये भी कोई परेशानी की बात है?"

"सभी माँ-बाप देखते हैं," सावित्री ने अपनी स्थिति का लाभ उठाकर हिम्मत से कहा, "आखिर बच्चा पति-पत्नी के प्रेम की निशानी होता है।"

"प्रेम की निशानी!" डाक्टर ने कन्धे उचकाए और उनकी कटी-छँटी मूँछों के नीचे व्यंग्य का सूक्ष्म टेढ़ापन आ गया। जिस तरह बच्चे की अटपटी बोली का मजा लेकर कोई बुजुर्ग उसकी शंका का समाधान करता है, ऐसे ही स्वर में डाक्टर ने कहा, "मुझे तो इतना मालूम है कि बच्चा सम्भोग की निशानी है। मेडिकल टर्म में समझा दूँ? पुरुष के वीर्य कण को स्त्री के शुक्र कण घेरकर गर्भाशय में ले जाते हैं और बच्चा पैदा होता है। प्रेम का कोई रोल वहाँ नहीं होता। प्रेम के बिना भी बच्चे पैदा होते हैं··· ये तो एक प्रोसेस है।"

सावित्री के मन में दबे हुए विद्रोह की चिनगारी फूटने को हुई। चीख-भरे स्वर में उसने कहा, "तो फिर माँ-बाप बच्चे पर जान क्यों छिड़कते हैं?"

"जान छिड़कना जरूरी नहीं है, बच्चे को सही ढंग से पालना-पोसना, पढ़ाना-लिखाना और स्वास्थ्य बनाना जरूरी है। सो आदमी को करना चाहिए।" डाक्टर की खनकती आवाज में फिर व्यंग्य उभर आया है, "बच्चा काफी हद तक एक संयोग है या फिर एक प्रक्रिया। राष्ट्रभाषा हिन्दी की साहित्यिक शब्दावली में कहना चाहो तो···शारीरिक रिश्तों की अनिवार्य परिणति।"

"बस। इतना ही।" सावित्री का गला आवेश से रुँध आया।

"लेकिन ये इतना गम्भीर मुद्दा नहीं है कि तुम व्यर्थ ही भावुक हो उठो। आखिर हुआ क्या ?" डाक्टर पलंग की पाटी से उठकर, पलंग के दूसरे किनारे को घेरकर दरवाजे की तरफ बढ़ गये, "अपने और बच्चे के स्वास्थ्य का ध्यान रखो। और हाँ, ज्यादा उपन्यास पढ़ने से दिमाग खराब होता है।" दरवाजे पर क्षण-भर रुककर डाक्टर ने कहा और फिर अपनी स्थिर चाल से बाहर चले गये।

सावित्री उस ओर तब तक देखती रही जब तक डाक्टर के पदचाप सुनाई देते रहे। फिर उसने गर्दन मोड़कर लम्बी साँस छोड़ी और शरीर को ढीला छोड़ दिया। इतने में बच्चा कुनमुनाया तो वह हाथ से उसे थपकने लगी। बगल में लेटा हुआ मासूम प्राणी, अपनी उपस्थिति से उसे आश्वस्त कर रहा था !

···धरती का चट्टानी अहसास···

अच्छी चहल-पहल थी। दूज के दिन डाक्टर सपरिवार जानकीप्रसाद के यहाँ रात्रिभोज पर आमन्त्रित थे। सावित्री अपनी बहन कमला का हाथ बँटाने और बतियाने के लिए किचन में चली गई। संदीप, आलोक, नलिनी और वारीश अपनी उम्र के अनुसार जानकीप्रसाद के बच्चों के साथ दो गोल में बँट गये थे। डाक्टर, जानकीप्रसाद और मुरारीलाल बैठक में आपसी चर्चा में व्यस्त थे। मुरारीलाल दूर के रिश्ते में इन लोगों के साले लगते थे। वे पी० डब्ल्यू० डी० में टाइमकीपर थे। अपनी नौकरी

और पद के अनुरूप व्यावहारिकता, महनशीलता और चापलूसी उनके चेहरे पर भरपूर झलकती थी। समयानुसार इन भावों में से किसी को भी चेहरे पर उजागर करने में वे सिद्धहस्त थे। लगता था कि उनके पास इस कार्य के लिए कोई अन्दरूनी स्विच था। बाकी समय उनके मुख पर ये भाव गड्डमड्ड होकर स्थायी तौर पर विराजमान रहते थे। इस समय भी उनके चेहरे पर मुस्कान थी, जो बहुत देर से ना तो कम हो रही थी और ना ही फैल रही थी। ना तो उस मुस्कान का कोई प्रयोजन था और ना ही अर्थ। वे बैठे-बैठे यह अवश्य सोच रहे थे कि क्या डाक्टर मेहता डाक्टरी पेशे से सम्बन्धित वार्ता के अतिरिक्त कोई और बात नहीं कर सकते ? जैसे, भाजी-भटे के ताजे भाव या रिश्तेदारों के यहाँ की शादी-ब्याह की चर्चा। और हर समय इस तरह गम्भीर बने रहकर, माथे पर बल डाले रहने से क्या उनके सिर में दर्द नहीं होता !

डाक्टर मेहता हृदयरोग से सम्बन्धित अधुनातन शल्य चिकित्साविधि इन्टेंसिव कारोनरी केयर यूनिट की जानकारी दे रहे थे। उन्होंने अपनी बात समाप्त की, "इस सिस्टम से काफी हद तक मरीज का फास्ट एण्ड एक्यूरेट ट्रीटमेन्ट हो सकता है बट ट्रबल इज दैट दिस सिस्टम इज डेमफास्टली। पुअर कन्ट्रीज एण्ड स्मान हास्पीटल्स कान्ट एफोर्ड दिस।" उन्होंने मुँह में दबी सिगरेट के टुकड़े को निकालकर उससे ही नई सिगरेट सुलगा ली।

मुरारीलाल को कुछ बोलने का मौका बहुत देर बाद मिला था। उन्होंने तुरन्त ही टोका, "आप सिगरेट बहुत पीते हैं जीजाजी।"

"हूँ···।" डाक्टर ने नाक से धुआँ निकालते हुए छोटा-सा उत्तर दिया।

"सिगरेट पीना तो बुरी बात है, इससे बड़ा नुकसान होता है।" मुरारीलाल फिर बोले।

"आपको क्या परेशानी हो रही है ?" डाक्टर ने सनसनाती हुई गुस्से आवाज में पूछा।

"मेरा मतलब है···डाक्टर लोग ही ऐसा करते हैं ?" मुरारीलाल ने

बात का खूंटा पकड़कर कहा।

डाक्टर ने गम्भीरता कायम रखते हुए कहा, "आपको मालूम है, अभी-अभी अमरीकी हृदयरोग विशेषज्ञों के एक संघ ने नई खोज की है कि हाई ब्लडप्रेशर की बीमारी कपड़े पहनने वालों को अधिक होती है। मेरी लैण्ड में नंगे रहने वालों में हाई ब्लडप्रेशर का रोग नहीं है। तो, डाक्टरों की इस सलाह को मानकर आप नंगे रहेंगे क्या ?"

मुरारीलाल क्षण-भर हतप्रभ हुए फिर तुरन्त सिर झुकाकर, मुण्डी हिलाते हुए हीं—हीं—हीं करके हँसने लगे। अपनी जाँघों पर दोनों हथेलियाँ पटककर बोले, "वाह, क्या बात है जीजाजी। मजाक बहुत बढ़िया करते हैं आप।"

जानकीप्रसाद मुरारीलाल की मुद्रा का आनन्द लेकर हँसना चाहते थे किन्तु डाक्टर के माथे पर बल पड़ते देखकर चुप रह गये। डाक्टर कुछ बोलने को हुए ही थे कि इतने में कमला ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा, "चलिए, थालियाँ परस गई हैं।"

जानकीप्रसाद ने सन्तोष की साँस ली। उठते हुए उन्होंने कहा, "चलिए, भोजन करते हुए ही बातें होंगी।"

डाक्टर ने एक बार अपनी आधी सिगरेट को देखा फिर जल्दी-जल्दी दो कश खींचकर उसे ऐशट्रे में मसल दिया।

किचन से लगे हुए भीतरी बरामदे में वे पहुँचे ही थे कि डाक्टर पर दृष्टि पड़ते ही नलिनी और संदीप का चहकना बन्द हो गया और वे एकाएक गम्भीर हो गये। बच्चों में एकाएक आया यह परिवर्तन इतना आकस्मिक था कि सभी का ध्यान उस ओर गया। जानकीप्रसाद ने बच्चों के गाल को सहलाकर कहा, "अरे, चुप क्यों हो गये तुम लोग ? अच्छा, अब तुम लोग भी खाने बैठो।"

बरामदे में ही दरी बिछाकर उसके सामने पीढ़े रखकर थालियाँ परस दी गई थीं। कमला ने किचन की ओर बढ़ते हुए सावित्री से कहा, "दीदी, तुम भी बैठ जाओ ना।"

"नहीं, मैं बाद में तुम्हारे ही साथ खा लूंगी", सावित्री ने कहा और अचार की प्लेट में से अचार निकालकर थालियों में रखने लगी।

थाली में रखी पूरियों को देखकर डाक्टर ने कहा, "भई···ये पूरियाँ उठा लो। रात के समय तली-फली चीजें नहीं खाऊँगा। रोटियाँ दो मुझे तो।"

"अरे भाई साहब, कभी तो बँधे-बँधाये जीवन से बाहर निकलिए। हर वक्त नियमों में बँधे रहने से जीवन मशीनी हो जाता है।" जानकीप्रसाद पीढ़े पर बैठते हुए बोले।

'आदमी भी मशीन ही तो है।" डाक्टर ने कहा, 'प्रकृति द्वारा बनाई गई सबसे सूक्ष्म और जटिल मशीन।"

"वाह साहब, क्या बात है!" मुरारीलाल ने पहला कौर चबाते हुए कहा, "आप तो कविता कर रहे हैं।"

"कविता तो अपना और दूसरों का समय बरबाद करने का दिमागी फितूर है।" डाक्टर ने भौंहें सिकोड़ी फिर आँखों में व्यंग्य और मजाक भरकर कहा, "हाँ कविता फविता की बात करनी हो तो अपनी इन बहनजी से करो।"

"लेकिन भाई साहब, कविता तो आदमी की भावना का प्रतिनिधित्व करती है। भावना के बिना आदमी जी नहीं सकता और ना ही वह आदमी कहला सकता है। इसे आप दिमागी फितूर-भर कैसे समझते हैं!" जानकीप्रसाद ने बात को आगे बढ़ाया।

"वाह, क्या बात है जीजाजी।" मुरारीलाल उचके, "सचमुच आदमी का दिल ही तो है, जिस पर इन्सानियत टिकी है।"

"दिल भी एक मशीन है जनाब। इन्सानियत से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। दिल के विषय में आप क्या मुझसे ज्यादा जानते हैं?" डाक्टर ने मुरारीलाल की तरफ घूरकर देखा।

"अरे···आप ठहरे हार्ट स्पेशलिस्ट। दिल के विषय में मैं आपसे ज्यादा भला क्या जानूँगा। मैंने तो साधारण जीवन की बात कही थी।"

भाई साहब, आदमी यदि केवल व्यावहारिकता में जी सकता और उसे भावना की आवश्यकता न होती तो आखिर वह पारिवारिक जीवन क्यों बिताता ? बीवी, बच्चे और सम्बन्धियों का प्रेम आदमी को इसीलिए तो कीमती लगता है क्योंकि वह मानवीय रिश्तों में जीवन की सार्थकता देखता है।"

"बिलकुल ठीक···यानी कि···कहते हैं आप···हाँ" मुरारीलाल ने कौर चबाते हुए कहा।

"अपना-अपना नजरिया है।" डाक्टर ने अविचलित स्वर में कहा, "जीवन को वैज्ञानिक दृष्टि से देखिए तो लगता है कि शादी का आधार प्रेम नहीं बल्कि शारीरिक मांग की पूर्ति और सुविधाजनक जीवन के लिए किया गया समझौता है। इट्स ए कंट्रैक्ट भाई साहब। आखिर, सभ्य होने के पहले भी बिना विवाह के ही मनुष्य के प्रेम और शारीरिक मांग की पूर्ति होती ही थी। सभ्यता के साथ ही समाज को ठीक ढंग से चलाने के लिए कई नियम बने हुए हैं और कई प्रकार के रिश्तों की तलाश की गई होगी। कुछ सुविधाएं पुरुष को चाहिए और कुछ स्त्री को। और समाज को चाहिए व्यवस्था—बस इसीलिए शादी होने लगी है। उसके पीछे कोई धार्मिक और आध्यात्मिक कारण ढूंढना बेकार है। यदि समाज को शादी से बेहतर व्यवस्था मिल जाय तो यह संस्था बदल सकती है—मिट भी सकती है।"

"बिलकुल ठीक···क्या बात है।" मुरारीलाल दांत निपोरकर बोले और खीर की कटोरी पर टूट पड़े। जानकीप्रसाद ने कमला को आवाज दी, "सब्जी दे जाना जरा।" फिर डाक्टर से बोले, "चलिए माना कि शादी प्रेम का परिणाम नहीं है पर शादी के बाद तो आदमी और औरत जीवन के अन्त तक एक-दूसरे की जरूरत महसूस करते हैं।"

"हां···केवल जरूरत," डाक्टर ने गम्भीर आवाज में बिना सिर उठाये कहा। भोजन परोसती हुई सावित्री का मुख आरक्त हो गया था और उसकी इच्छा हो रही थी कि वह भी बोले। ऐसे मौके पर भी कुछ

हो रही थी कि वह चाहकर भी इन बातों का उत्तर क्यों नहीं दे पाती। कितनी बार उसके मन ने विरोध किया था पर वह विरोध ओठों तक नहीं आ पाया था। आज भी उसका आवेश अन्दर ही अन्दर थरथराकर रह गया था। अपने चेहरे के भावों को छिपाने के लिए वह सब्जी का कटोरा लेकरा किचन में चली गई।

'''तपती धरती, चुभते पत्थर'''

शाम का धुँधलका गहरा गया था। अब हल्की-हल्की ठंड पड़ने लगी थी। काफी बोरियत थी इसीलिए चाय का समय न होते हुए भी सावित्री ने चाय बनवाकर पी थी। संदीप अभी-अभी म्यूजियम लाइब्रेरी से पुस्तकें लेकर लौटा था और अपने कमरे में कुछ खटर-पटर कर रहा था। आलोक वायलिन सीखने के लिए कमला देवी संगीत महाविद्यालय चला गया था। नलिनी और वारीश कम्पाउंड में खेल रहे थे और उनकी आवाजें यदाकदा सावित्री को सुनाई दे जाती थीं। सावित्री को घिरती शाम बड़ी उदास, सूनी और अर्थहीन लग रही थी। कुछ कमरों और बरामदों की बत्तियाँ जलाने के बाद वह समझ नहीं पा रही थी कि अब क्या करे। अपने चारों तरफ के वातावरण से उसे असम्पृक्तता का बोध हो रहा था। इस सम्पूर्ण कैनवास में वह अपने को मिसफिट अनुभव कर रही थी।

कुछ ही दिनों पहले, बैजनाथपारा का किराये का मकान छोड़कर वे लोग बैरन बाजार के इस नये निजी मकान में आ गये थे। शहर के बीच बसे बैजनाथपारा की चहल-पहल से युक्त और शोरगुल-भरी शाम से बैरन बाजार की खामोशी-भरी सम्भ्रान्त शाम बिलकुल ही अलग थी। पुराने मुहल्लों की कस्बाई आत्मीयता का आभास देने वाली शाम नई कालोनी में नहीं उतरती। किन्तु जो कुछ उसे अनुभव हो रहा था वह मात्र बाह्य नहीं था। उसे लग रहा था कि खामोशी और उदासी केवल बाहर नहीं है बल्कि कहीं उसकी आत्मा की गहराई में भी है।

सड़क की बत्तियाँ जल गई थीं। अँधेरा बढ़ता देखकर वह उठी और बाहर जाकर उसने बच्चों को पुकारा। घर के अन्दर का खालीपन बच्चों की नर्म-गर्म बोली और हँसी से गहगहा उठा तो सावित्री को अच्छा लगा। शोर मचाते और उछलते-कूदते बच्चों से उसने कहा, "चलो, झट से हाथ-पैर धो डालो फिर पढ़ने बैठो।"

पाँच साल के वारीश ने माँ की टाँगों से लिपटते हुए कहा, "माँ मुझे भूख लगी है। मैं खाना खाकर पैर धोऊँगा।"

सावित्री ने उसके बालों में उँगलियाँ फिराते हुए कहा, "खाना खाकर नींद आ जाएगी बेटे। चलो, मैं हाथ-पैर धुलाकर तुमको खाना खिला दूँ।" वारीश शायद और जिद करता पर कमरे में आलोक के प्रवेश करने से उसका ध्यान बँट गया। आलोक के हाथ के वायलिन बाक्स को देखकर उसने कहा—रेंयं रेंयं—।

नलिनी ने भी आलोक के आगे उछलते हुए उसे छेड़ा, "भइया, थोड़ा रेंयं—रेंयं सुनाओ न।"

आलोक ने अपने स्वभाव के अनुसार गम्भीर और धीमे स्वर में ही उत्तर दिया, "भैंस के आगे बीन बजाने के लिए गुरुजी ने मना किया है।"

नलिनी माँ का आँचल पकड़कर ठुनठुनाने लगी, "माँ, देखो न। भइया क्या कहते हैं।"

"ओफ''तुम लोग तो छोटे-छोटे बच्चों से भी गये-गुजरे हो। नलिनी, छोड़ मेरी साड़ी। ये चिल्लपों मचाना छोड़ो और थोड़ी देर तक पढ़ो। फिर मैं खाने के लिए बुलाऊँगी।"

किचन में सावित्री वारीश को किसी तरह मना कर खिला रही थी। उनींदे वारीश को खिलाने के लिए कहानी सुनाते हुए सावित्री को दूसरे कमरे से अभी तक बच्चों के बोलने की आवाजें आ रही थीं। उन्होंने अपने बस्ते जरूर निकाल लिए थे लेकिन पढ़ने के बजाय वे पहेलियाँ बुझा रहे थे। वह उन्हें टोकने को थी कि बाहर गाड़ी रुकने की आवाज

आई। बच्चे एकदम खामोश हो गये और घर में यूँ सन्नाटा छा गया जैसे वहाँ एक भी आदमी न हो।

—डाक्टर घर लौटे थे—।

पंजों पर जोर डालने वाले पदचाप सुनाई दिये, फिर पर्दा हटा। दाहिने हाथ में मुड़े हुए स्टेथस्कोप को थामे डाक्टर मेहता कमरे में घुसे। उनके चेहरे पर हमेशा की तरह गम्भीरता थी और माथे पर बल। बच्चों ने बिना सिर उठाये, आँखों के कोर से उन्हें देखा और फिर पढ़ने का ढोंग करने में जुट गये।

आरामकुर्सी पर बैठकर डाक्टर ने स्टेथस्कोप बगल की टेबल पर रखा, सिगरेट सुलगाई और पहला कश खींचकर उन्होंने चारों तरफ देखा। बच्चों पर उनकी दृष्टि कुछ क्षणों तक टिकी रही। उनके माथे के बल जरा से थरथराये और वे बोले, "अच्छा, पढ़ाई चल रही है?"

"जी।" आलोक ने खुश्क गले से कहा किन्तु उसकी आवाज फुस-फुसाहट से अधिक नहीं निकल सकी।

"क्या पढ़ रहे हो?" डाक्टर ने उसी कारोबारी स्वर में पूछा।

"जी, फिजिक्स।"

"हूँ..." डाक्टर ओठों के बीच फँसी सिगरेट के छोटे-छोटे कश लेते रहे। कुछ देर बाद उन्होंने नलिनी से कहा, "नलिनी एक गिलास पानी ले आओ और अपनी माँ से कहना कि चाय बनवायें।"

नलिनी और आलोक ने सिर नीचा किये हुए ही एक दूसरे को देखा फिर नलिनी उठी और अन्दर चली गई। पानी लेकर नलिनी आहिस्ते-आहिस्ते चलकर डाक्टर के पास पहुँची। पानी का गिलास वह प्लेट पर रखकर लाई थी। वह बीच-बीच में बायाँ कन्धा बेवजह उचका रही थी और उसकी आँखें बेहद सजग थीं। अब तक डाक्टर ब्रिटिश जनरल आफ सर्जरी का नया अंक खोल चुके थे। सबसे पहले वे अपने ही प्रकाशित लेख को सरसरी दृष्टि से देख रहे थे। नलिनी जब सामने आकर खड़ी हुई तब उन्होंने चौंककर सिर उठाया और पानी का गिलास

उठाकर कहा, "वाह, अब तो बड़े सलीके से काम करने लगी हो।"

नलिनी ने आँखें उठाकर देखा और मुस्कराने की कोशिश की। मुस्कुराहट ओठों के बीच में फंसकर रह गई, आँखों की गहराई तक नहीं पहुँच पाई। पिता के सपाट चेहरे को देखकर वह, हमेशा की तरह अचकचा गई तो जबरन ही एक पैर के अँगूठे से दूसरे पैर को खुजलाने की व्यस्तता ओढ़कर नीचे देखने लगी। डाक्टर ने पीकर दो-चार छोटी-मोटी बातें की और नलिनी ने दो-चार छोटी-मोटी हूँ—हाँ—। सावित्री जैसे ही चाय की ट्रे लेकर कमरे में आई नलिनी छाती के अन्दर भरी हुई हवा को धीरे-धीरे निकालते हुए अन्दर चली गई। सावित्री भर समझ सकी कि नलिनी ने त्रासदायक मजबूरी से मुक्ति पाई है।

जरनल को पढ़ते हुए डाक्टर ने एकबारगी अढ़ाई कप चाय पी। यह उनका सामान्य डोज़ था। डाक्टर इससे कम चाय नहीं पीते थे—चाहे अपने यहाँ पियें या दूसरे के यहाँ।

चाय पीकर डाक्टर ने हाथ-मुँह धोये और कपड़े बदले। उनकी उपस्थिति से घर का हर सदस्य अतिरिक्त रूप से सजग हो गया था। बच्चे एक जगह बैठकर भी चुप थे—अपनी-अपनी पुस्तकों पर सिर झुकाये। सावित्री अपने कमरे में वारीश को थपकियाँ देकर सुला रही थी। वारीश बिना कुनमुनाये आँखें बन्द किये पड़ा था। चारों तरफ था—एक गहरा चुप। घनीभूत सन्नाटे को तोड़कर, सावित्री को सम्बोधित करती हुई डाक्टर की आवाज़ खनखनाई, "मुझे लौटने में देर होगी।"

सावित्री को अपने पर कोफ्त हो रही थी। वह क्यों नहीं कह पाती कि आप जल्दी आते कब हैं? सन्नाटे के तालाब में बाहर जाते पद-चापों की कंकड़ियों से बनी लहरें दूर होते-होते धीरे-धीरे शान्त हो गईं। कुछ क्षणों तक एक तार नीरवता के बोझ से दबा रहा। फिर बच्चों की लम्बी-लम्बी साँसों की आवाज़ें आई। किसी ने फुसफुसाकर पूछा, "गये?"

बाहर गाड़ी स्टार्ट हुई। किसी ने गला साफ करके धीमे स्वर में उत्तर दिया, "हाँ।"

फिर दो क्षणों की चुप्पी रही। अचानक नलिनी ने जोर से कहा, "तीन अक्षर का मेरा नाम, उल्टा सीधा एक समान। बोलो ?"

विरोध में आलोक की आवाज उभरी, "अभी मेरी बारी है।"

"नहीं मेरी…"

"नहीं…"

बच्चों को पढ़ने के लिए टोकते-टोकते सावित्री चुप लगा गई। जीवन की हरारत से लबरेज आवाजें सुनते रहने की उसकी इच्छा हुई।… पतझड़ के बाद पेड़ों पर उगी हुई लाल कोंपलें…।

—डाक्टर को लौटने में साढ़े दस बज गए थे। सावित्री बुनाई करके और फिर पत्रिका पढ़ते-पढ़ते ऊब चुकी थी इसलिए बिस्तर पर लेटी हुई थी। घण्टी बजाने पर उसने जमुहाई लेते हुए दरवाजा खोला। घर में घुसते हुए डाक्टर ने केवल एक छोटा-सा प्रश्न फेंका, "बच्चे सो गये ?" सावित्री ने सिर हिलाकर उत्तर दिया।

—करीब-करीब हर दिन ऐसा ही प्रश्न और ऐसा ही उत्तर।

जब तक डाक्टर ने हाथ-पैर धोकर कपड़े बदले, सावित्री ने थाली परसकर पलंग के पास रखी आरामदेह कुर्सी के सामने स्टूल पर सजा दी थी। डाक्टर तौलिया से मुँह पोंछते हुए आए और कुर्सी पर बैठकर भोजन करने लगे। एक बार सिर उठाकर उन्होंने इतना भर कहा, "खड़ी क्यों हो ? बैठ जाओ न।" ना तो सावित्री कुछ बोली और ना ही डाक्टर ने दुबारा आग्रह किया।

—करीब-करीब रोज दोहराई जाने वाली औपचारिकता।

सावित्री ने भोजन बहुत जल्दी किया क्योंकि नींद के मारे उसकी आँखें झँपी जा रही थीं। जब वह बाथ-रूम से लौटी तब तक डाक्टर बिस्तर पर लेट चुके थे। बत्ती बुझाकर लेटते ही सावित्री को अनुभव हुआ कि वह एक बेजान पुस्तक है जो दूसरे के हाथ में है। पढ़ने वाला

उसे अपनी इच्छा से जब चाहता है खोलता है और जब चाहता है उसे बन्द कर देता है।

आलोक जब घर के सामने रिक्शे से उतरा तब बारह बज चुके थे। ठण्ड की खुशनुमा धूप चारों तरफ फैली थी। कम्पाउण्ड वाल के पास लगा अमलतास गहगहाकर खुशमिजाज बच्चे की तरह हल्की हवा में झूम रहा था। बरामदे की सीढ़ियों के दोनों तरफ रखे गमलों में दुपहरिया के सुर्ख लाल फूल खिले हुए थे। किन्तु यहाँ से वहाँ तक जमी हुई मुर्दनी मौसम की जीवन्तता पर तारी थी।

उसे कल ही चिरमिरी में वारीश का टेलीग्राम मिला था और वह रात की गाड़ी से ही रवाना हो गया था। पिछले साल ही उसे चिरमिरी कालरी में नौकरी मिल गई थी। जब उसे तार मिला था तो उसे इतनी आशंका-भर हुई थी कि कुछ अघटित घटा है। किन्तु क्या घटा है इसकी कोई भी कल्पना वह नहीं कर पाया था। घर में खिंचे सन्नाटे को देखकर उसका हृदय धकधकाने लगा। जैसी गहन चुप्पी छाई हुई थी उससे उसके लिए अन्दाज लगाना कठिन हो रहा था कि घर में कौन है और कौन नहीं है।

अस्थिर मनःस्थिति के उपरान्त भी, अपनी आदत के अनुसार वह स्थिर कदमों से चलता हुआ दरवाजे की ओर बढ़ गया। चारों तरफ पसरी चुप्पी में गौरैया की चहचहाहट भर सुनाई पड़ रही थी। बरामदे को पार कर बीच के कमरे में वह कुछ क्षणों तक पशोपेश की स्थिति में खड़ा रहा फिर भीतर आँगन की तरफ न बढ़कर वह बैठक की तरफ बढ़ गया। बैठक में घुसते ही उसने देखा कि माँ कुर्सी पर निढाल-सी बैठी हुई है। कुर्सी के हत्थे पर उसके दाहिने हाथ की कुहनी टिकी हुई थी। अपनी हथेली पर गाल को टिकाए हुए वह स्थिर आँखों से दीवार को देख रही थी। कमरे में टूटे काँच के टुकड़े फैले हुए थे।

आलोक ने पास पहुँचकर धीरे-से पुकारा, "माँ!"

सावित्री की तन्द्रा भंग हुई। सिर घुमाकर उसने कुछ क्षणों तक खोई-खोई दृष्टि से आलोक को देखा फिर धीरे से कहा, "आलोक !"

आलोक ने माँ के हाथों को पकड़कर पूछा, "क्या बात है माँ ? मुझे वारीश का टेलीग्राम मिला।" आलोक की शान्त-गम्भीर आँखों में आशंका के भँवर चक्कर काटने लगे।

आलोक को देखकर सावित्री के हृदय को थोड़ी तसल्ली मिली थी। अपने तीनों लड़कों में उसे सबसे अधिक भरोसा आलोक का ही था। संदीप फौज में डाक्टर होकर आगरा चला गया था। अभी जब सावित्री के सामने गम्भीर समस्या आई तो उसने वारीश से आलोक को ही तार करने के लिए कहा था। संदीप का नम्र और प्रेमी स्वभाव उसकी आत्मा को ठण्डक देता था पर जीवन की विषम समस्याओं से निपटने में आलोक की स्थिरता उसे अधिक आश्वस्त करती थी। उसने गहरी साँस छोड़कर कहा, "अन्दर चलो बेटा, बतलाती हूँ।"

सावित्री उठने लगी पर आलोक ने उसका हाथ पकड़कर बैठाते हुए स्थिर स्वर में कहा, "पहले बतलाओ माँ।"

सावित्री ने काँपते स्वर में कहा, "नलिनी घर से भाग गई।"

आलोक ने आश्चर्य से दुहराया, "नलिनी···घर···से···भाग··· गई।"

"हाँ बेटा, विनोद के साथ।"

"···विनोद···के साथ। ये तो···यानी···" अपनी किसी भी कल्पित आशंका के उस पार की बात सुनकर आलोक समझ नहीं पा रहा था कि क्या कहे। उसने जैसे अपने से ही बुदबुदाकर कहा, "कैसे हो गया यह ?"

"क्या कहा जाय। किस्मत ने हमारे साथ बुरा खेल खेला।" सावित्री ने जोर लगाकर कुर्सी से उठते हुए कहा।

—किचन में पराठा बनाते हुए सावित्री ने बतलाया, "परसों दोपहर को नलिनी अपनी सहेली विभा के यहाँ जाने का कहकर निकली।

शाम को देर हुई तो विभा के यहाँ पुछवाया। वहाँ मालूम हुआ कि वहाँ तो वह गई ही नहीं थी। फिर उसके पढ़ने की मेज पर उसकी चिट्ठी मिली।"

"कहाँ है चिट्ठी?" आलोक ने अनमने भाव से कहा। वह अभी भी असमंजस में डूबा हुआ था कि क्या नलिनी सचमुच इतनी बड़ी हो गई है कि गम्भीरता से प्रेम कर सके और इतना दुस्साहस भरा कदम उठा सके।

"चिट्ठी तुम्हारे पिताजी के पास है। उसमें लिखा है कि वह विनोद के साथ जा रही है। उसके साथ उसकी शादी हो सके या न हो सके पर वह उसी के साथ रहेगी। अब बतलाओ बेटा, हाथभर की छोकरी और ऐसी बेशरमी।" सावित्री के चेहरे पर परेशानी और अनकहनी को कहने की लज्जा थी।

आलोक पैर के नाखून से कुरेदने का बहाना करते हुए लगातार नीचे देखे जा रहा था। उसकी भावमुद्रा से समझना कठिन था कि वह क्या अनुभव कर रहा है। बुदबुदाते से स्वर में उसने कहा, "विनोद तो इस तरह का नहीं लगता था।" सावित्री चुप ही रही तो आलोक ने फिर पूछा, "पापा···"

सावित्री ने अनुभव किया कि पूरे प्रयास के उपरान्त भी अन्दर की तिक्तता और वितृष्णा को वह चेहरे पर उभरने से रोक नहीं सकी थी। "तुम्हारे पिताजी···जानते तो हो। समस्या को सुलझाने के बजाय···" आगे के शब्द उसके गले में रुँध गए और उसकी आँखें नम हो गईं। आँचल के छोर से आँखें पोंछते हुए उसने कहा, "सारा दोष मेरे सिर पर मढ़कर खुद अपने को बरी मान लिया है उन्होंने। वहाँ गुस्से में कोई अनहोनी ना हो जाय, इसलिए तुम्हें बुलवाया। अच्छा हुआ तुम जल्दी चले आये।"

जब से समझदारी आई थी तभी से आलोक ने माँ के मानसिक एकाकीपन को पहचाना था। पहचानना कठिन इसलिए नहीं था

स्वयं उसने और उसके भाइयों ने भी कभी किसी स्तर पर अपने पिता से कोई जुड़ाव का अनुभव नहीं किया था। किसी भी सुख और दुख, हँसी और आँसू में पिता के सहभागी होने का आभास उसे हुआ ही नहीं था। कौन जाने माँ वर्षों से अपने को अकेली ही नहीं बल्कि असुरक्षित भी अनुभव करती रही हो। आलोक ने उठते हुए कहा, "मैं नहा लेता हूँ माँ।" जाते-जाते उसने मुड़कर कहा, "लेकिन माँ, नलिनी और विनोद के व्यवहार से कभी ऐसा शक तो हुआ नहीं।"

काम के बहाने सावित्री ने सिर घुमा लिया। उसे लगा कि किसी दुखती हुई रग पर अचानक ठोकर लग गई हो और सारा शरीर झनझनाकर एकबारगी शून्य हो गया हो।

अपने भीतर पनपती अपराधभावना की स्वीकारोक्ति सहज काम नहीं है। सावित्री कल से अपने मन में कितनी-कितनी बार प्रश्न कर चुकी थी कि जो कुछ घटित हुआ उसकी किस हद तक जिम्मेदारी उसकी थी।

विनोद को अपने घर में लाने वाली वह स्वयं थी। उसके चचेरे भाई के अनाथ लड़के विनोद की उम्र उसके लड़कों के बराबर थी। जब सावित्री ने उसे अपने घर रायपुर में रहने के लिए बुलाया था तब वह दसवीं में पढ़ता था। वह दृश्य उसे अभी भी अच्छी तरह याद था। सहमता-सकुचाता विनोद उसके यहाँ टीन की छोटी-सी पिचकी पेटी लेकर आया था। उसकी दयनीय मुद्रा देखकर सावित्री के मन में ममता उमड़ी थी। उसने प्यार से विनोद के बालों में अपनी उँगली फिराई तो विनोद अपनी बिना लोहा की हुई कमीज के बटन को बेवजह खोलने-लगाने लगा था।

सावित्री को डर था कि डाक्टर का व्यवहार न जाने कैसा रहेगा। पर उसकी आशंका के विपरीत, डाक्टर ने विनोद के आगमन का स्वागत किया था। अस्पताल से लौटकर चाय पीते हुए उन्होंने विनोद को बुला-

कर कहा, "देखो विनोद, अच्छी तरह पढ़ना-लिखना। अगर किसी चीज की जरूरत हो तो मांग लेना।"

पैर के अँगूठे से फर्श को कुरेदते हुए विनोद ने डाक्टर की सन-सनाती आवाज को सुनकर केवल सिर हिला दिया था।

डाक्टर के बाहर जाते ही संदीप ने पृथ्वीराजकपूर के मुगलेआजमी अन्दाज से कहा, "विनोद भइया, जब हिज हाइनेस हार्ड स्टोन घर में रहें तो बस इसी तरह मुण्डी भर हिलाया करो।"

"हार्ड स्टोन ?" विनोद ने अचकचाकर पूछा था।

"जी हाँ, हमारे पापा जी।"

इसमें सन्देह नहीं कि उस समय भी सावित्री को लगता था कि विनोद उसके लड़कों से कहीं अधिक मिलनसार, नम्र और व्यावहारिक है। वह परिवार का अभिन्न अंग और अनिवार्य सदस्य कब बन गया किसी को मालूम भी नहीं हो सका था। सब कुछ एक सहज प्रक्रिया के रूप में हुआ था। नलिनी से विनोद तीन वर्ष बड़ा था। समय बीतने के साथ यदि विनोद नलिनी को पढ़ाने लगा, उसे इधर-उधर पहुँचाने के लिए जाने लगा और साथ में सिनेमा देखने लगा तो कुछ भी अस्वा-भाविक और अजीब नहीं लगा था। सच तो यह था कि यह सब कुछ लोगों को सुविधाजनक ही लगता था। अक्सर ही मान लिया जाता था कि नलिनी के काम तो विनोद की सहायता से पूरे हो ही जायेंगे।

सावित्री को अजीब तो पहली बार तब लगा था जब विनोद बी० ए० फाइनल में पहुँच गया था। नलिनी का बी० ए० का पहला साल था। दोनों के विषय काफी कुछ मिलते थे। सच तो यह था कि नलिनी ने विनोद की सहायता से ही विषयों का चयन किया था। वे साथ-साथ पढ़ते भी थे—एक ही टेबिल पर। एक बार सावित्री रात को साढ़े नौ बजे के करीब उनके लिए दूध के गिलास लेकर गई। विनोद और नलिनी की पीठ दरवाजे की ओर थी। दोनों की कुर्सियाँ पास-पास थीं। एक-एक हाथ टेबल पर था और उन्होंने एक-दूसरे के हाथ

थे। आहट पाते ही उन्होंने अपने गुंथे हुए हाथ अलग कर लिये थे। तभी सवित्री के मन में पहली वार आशंका जन्मी थी। किन्तु वह केवल एक कमज़ोर-सी आशंका भर थी। इतनी कमजोर कि वह तय नहीं कर सकी कि उसे उन्हें कुछ भी कहना चाहिए या नहीं। कुछ कहने और शक करने का कोई आधार भी नहीं था। किन्तु उसने मन में यह भी तय कर लिया था कि उसे उस तरफ से वेखवर नहीं रहना चाहिए।

सावित्री ने विना कुछ कहे, दोनों के पढ़ने की व्यवस्था अलग-अलग कमरे में कर दी थी। तव सावित्री ने अनुभव किया था कि वच्चों को यह वतलाना कितना कठिन है कि माँ उनके विषय में किस ढंग से सोचती है। आपसी रिश्ते रस्सियों की भाँति गुंथे हुए थे और कौन-सी गठान कहाँ पड़ी हुई है यह जानना कठिन था। फिर उसे यह भी लगता था कि कुछ भी कहना कितना वेमानी और ओछा होगा यदि उसका सन्देश निराधार हो। वच्चों के मन में अपने प्रति लगाव और आदर भाव की कमी की कल्पना ही उसे हिला देती थी। ऐसा होना उसके जीवन की सवसे वड़ी दुर्घटना ही नहीं, पराजय भी होती। जीवन की एकमात्र यही वाजी उसकी अपनी थी जिसे वह हारना नहीं चाहती थी।

अलग कमरों में पढ़ने के विषय में दोनों ने कोई आपत्ति नहीं की थी। नलिनी ने केवल इतना कहा था, "विनोद दादा यहाँ पढ़ते हैं तो मेरी पढ़ाई में हेल्प हो जाती है।"

सावित्री ने वात को हलका वनाते हुए सहज ढंग से कहा था, "अरे भाई, इकट्ठे पढ़ने में गप्पवाजी ज्यादा होती है पढ़ाई कम। अकेले वैठ-कर पढ़ने में मन एकाग्र रहता है।"

जाते ही थे। किसी को भी यह अजीब क्योंकर लग सकता था? घर के दो सदस्यों के आपसी सहज व्यवहार पर बन्धन लगाने की कल्पना ही सावित्री को अजीब लगती थी। क्या कहकर वह बन्धन लगा सकती थी? और बन्धन लगाने के पक्ष में घर के अन्य सदस्यों को वह क्या समझाती?

नलिनी और विनोद का व्यवहार अत्यन्त सन्तुलित था। किसी के लिए भी उनके मन में रिसती कोमल धारा का आभास पा लेना कठिन था किन्तु सावित्री को समझने में बहुत समय नहीं लगा था। कोई छोटी-सी मीठी-सी बतकही का टुकड़ा, आँख की कोर का कोई हलका-सा संकेत और सामान्य बातों के बीच कोई अप्रत्यक्ष मान-मनौवल से उनकी आन्तरिक स्थिति का आभास उसने पा लिया था। पर वह कहती किससे? शारीरिक स्तर पर किसी के साथ भागीदारी होना परम्परा को ढोकर खींचने की एक विवशता मात्र थी। पर मानसिक स्तर पर डाक्टर के साथ उसकी कोई भी भागीदारी नहीं थी तब। यह अनुभव करके वह आतंकित हो गई थी कि जिसके साथ वह एक ही कमरे में जीवन व्यतीत करती रही है उससे उसकी आन्तरिक दूरी इतनी अधिक थी कि दूसरा व्यक्ति क्षितिज के पास ठहरा हुआ एक बिन्दुमात्र दिखलाई पड़ रहा था।

फिर भी उसने अपनी तरफ से कोशिश की थी। एक लड़खड़ाती-सी अकेली कोशिश। रात को भोजन करते हुए डाक्टर से घरेलू समस्या पर कुछ भी बात करना उसे बड़ा अजीब लगा था। वह नदी के दोनों किनारों पर खड़े दो अजनबियों की आन्तरिक वार्ता की कोशिश थी। दोनों किनारों पर खड़े अजनबी एक दूसरे के हिलते ओठ तो देख पाते हैं पर दोनों की आवाजों को शून्य का फैलाव निगल लेता है। सुनाई पड़ती है मात्र नदी की वेगानी आवाज।

सावित्री ने सप्रयास धीमी आवाज में कहा, "अब नलिनी के लिए चिन्ता कीजिए।"

"क्यों ?" डाक्टर ने आँखें उठाकर बिना किसी उत्सुकता के कहा, "तबियत खराब है क्या ?"

"जी नहीं," सावित्री अचकचा गई, "मेरा मतलब है कि अब उसकी शादी की चिन्ता करनी चाहिए।"

"व्हाट ! शादी !!" डाक्टर ने आँखें चढ़ाकर कहा, "दिमाग फिर गया है तुम्हारा ? अभी उसकी उम्र है शादी की ?"

सावित्री को लगा था कि वह सम्पूर्ण प्रकरण ही व्यर्थ है और किसी हद तक हास्यास्पद भी। वह अनुभव कर रही थी कि बात को आगे बढ़ाने का कोई मतलब नहीं है। पर तभी उसके मस्तिष्क में अपनी जवान लड़की की आँखें कौंध गईं जिनमें आँधी के बगूले तूफान बनने के लिए आतुर थे। यह घनीभूत होता तूफान न जाने कितनी सीमाओं और मर्यादाओं को तहस-नहस करने पर उतारू था। उस तूफान की याद आते ही सावित्री ने किसी तरह बल संचय करके कहा, "लड़की की शादी जल्दी ही हो जाय तो अच्छा रहता है।"

डाक्टर ने विरक्ति से मुँह घुमाकर खनकते स्वर में कहा, "बिना पढ़ाए-लिखाए उसे अपनी तरह बनाना है क्या ?"

यही अन्धी गली का वह मुहाना था जहाँ वह असहाय होकर खड़ी हो जाती थी और आगे का रास्ता ढूंढ़ने का असफल प्रयास करती थी। पर उस बन्द मुहाने में कहीं कोई ऐसी दरार नहीं मिलती थी जहाँ से प्रकाश की कोई हलकी-सी किरण भी आ सके। जो कुछ उसके अन्दर घुट रहा था उस रहस्य को बँटाने वाला कोई भी नहीं था। कई बार उसके मन में यह भी आता था कि वह सब कुछ बतला दे। किन्तु उसके हृदय का एक कोना निरन्तर यही कहता रहता कि मानवीय रिश्तों को मात्र आवश्यकता समझने वाले व्यक्ति से इस तरह की नितान्त घरेलू समस्या का समाधान नहीं होगा। अधिक सम्भावना बात के और बिगड़ जाने की थी। बाद को हुआ भी तो यही था। उस क्षण संशय की स्थिति में दुविधाग्रस्त सावित्री को लगा था कि भोजन करते हुए पति के सामने

बैठकर पड़ोसिन की साड़ी से लेकर जीवन की छोटी-बड़ी समस्याओं पर बतिया सकने वाली औरतें बड़ी भाग्यशाली होती है। आत्मा की अँधेरी कोठरी में तनहा कैद होना जीवन की सबसे बड़ी सजा है।

तब उसके मन में कभी-कभी यह विचार भी उठता था कि विनोद को क्यों न वापस भेज दें। किन्तु कारण का पूर्ण विश्लेषण किये बिना यह सम्भव नहीं था। आलोक के साथ विनोद का बेहद याराना था और चारीश तो उसका परम भक्त था। फिर विनोद के जीवन का प्रश्न भी था। सावित्री का अपना कोई भाई नहीं था, ले-देकर एक चचेरा भाई ही था। सच तो यह था कि विनोद पर उसकी सहज ममता भी और वह चाहती थी कि विनोद पढ़-लिखकर कमाने लगे। अपने भतीजे को अपनी ही बेटी के जीवन में धँसते हुए देखने के अतिरिक्त उसके पास कोई उपाय नहीं था।

नलिनी विनोद को बाकायदा विनोद दादा कहकर पुकारती थी किन्तु यह सम्बन्ध मात्र पुकारने तक ही सीमित था···इस बात का बोध केवल सावित्री को था।···आज जब वह पिछली बातों को सोच रही थी तो उसे लग रहा था कि उसके अन्तर्मन की दुविधा शायद उसके स्वार्थ और असुरक्षा के भाव से जन्मी थी। वह कल्पना भी नहीं कर पाई थी कि समस्या को वह कैसे सुलझाएगी। अपने मन को उसने समझाया था कि समय बीतने के साथ शायद कोई ऐसा तरीका निकालने में वह सफल हो जाएगी कि उसके निजी जीवन को सुरक्षित रखने वाली रिश्तों की दीवारों में कोई दरार न पैदा हो। आज उसे लग रहा था कि नलिनी के भविष्य से कहीं अधिक चिन्ता उसे अपने व्यक्तिगत प्यार के संसार की थी जिसे अनजाने ही उसके मन ने डाक्टर से दूर होते-होते गढ़ लिया था।

जब विनोद ने एम० ए० किया तब तक संदीप सागर केन्ट में मिलीटरी डाक्टर के पद पर जा चुका था। विनोद को महासमुन्द की उत्तम कंस्ट्रक्शन कम्पनी में नौकरी मिल गई थी। उसके महासमुन्द रवाना

होने के एक दिन पहले की शाम भी उसे आज तक याद थी।

शाम घिर आई थी और संयोग से घर में कोई नहीं था। विनोद भी अभी-अभी घूमकर लौटा था और अपने कमरे की ओर जा रहा था। ड्राइंगरूम में बैठी सावित्री दरअसल उसी की प्रतीक्षा कर रही थी। उसने पुकारा, "विनोद!"

शायद उसकी आवाज में ही कोई ऐसा परिवर्तन था कि विनोद जब उसके सामने आया तो कुछ आशंकित और सजग लग रहा था। ड्राइंगरूम की बत्ती जलाये बिना सावित्री ने उससे स्पष्ट बातें की थीं। स्वर को बड़े प्रयास से स्थिर बनाये रखकर उसे यह बतलाया था कि वह नलिनी का रास्ता छोड़कर अलग हो जाए इसी में सबकी भलाई है। विनोद सिर झुकाए हुए पत्थर की मूर्ति की तरह सब कुछ सुनता भर रहा। उसके मन में क्या उमड़ रहा था इसे वह जान नहीं सकी। अपने द्वारा किये गए एहसान तक का वास्ता देकर उसने घुमा-फिराकर विनोद से कहा था कि वह अब नये सिरे से जीवन का प्रारम्भ करे और इस घर से दूर ही रहे।

नौकरी ज्वायन करने के बाद विनोद ने वास्तव में घर आना छोड़ दिया था। घर के लोगों को उसके न आने पर आश्चर्य होता था। हाँ, नलिनी ने कभी कुछ नहीं कहा था। सावित्री ने सोचा था कि किसी से इस सम्बन्ध में चर्चा करने की आवश्यकता ही क्या है···समस्या तो हल हो ही गई है।

डाक्टर मेहता काफी देर से लौटे थे। उनके चेहरे पर तब भी क्रोध झलक रहा था। आँखों में लाल डोरे और बाल बिखरे हुए। शेविंग न करने के कारण गोरे गालों पर हलके से हरेपन का आभास हो रहा था। ओठों में दबी सिगरेट आधी खत्म हो गई थी। घर के भीतरी बरामदे में सावित्री और आलोक को देखकर वे ठिठके और सिगरेट के छोटे-छोटे कश मारने लगे।

ग्रालोक की ग्रोर एक उड़ती दृष्टि डालकर उन्होंने पूछा, "मालूम तो हो गया है ?"

"जी······" ग्रालोक ने धीरे से कहा।

"मैंने पुलिस में रिपोर्ट लिखा दी है।" उनके स्वर में तीखापन था ग्रौर बहुत साफ था कि बात उन्होंने मुख्यतः सावित्री को सुनाने के लिए कही थी। "ग्राई विल सी दैट बास्टर्ड विनोद। एण्ड दिस नन्दिनी···डैम इट।"

श्रीमती कोठारी पन्द्रह मिनट से लगातार बोल रही थी।

हाँफते हुए उन्होंने ग्रपनी बात समाप्त की—"तो ये तो है महिला समाज की हालत। ग्रधिकांश ग्रौरतें ग्रपना ग्रौर दूसरों का समय बरबाद करती हैं। ग्रब ग्रापको क्या बतलाएँ, ग्राप तो जानती ही हैं। बस इधर बैठना, उधर बैठना ग्रौर चुगली करना ग्रौर दूसरों की निन्दा करना। क्या नाम से कि···इसी में महिलाग्रों का समय जाता है। ग्रब क्या बतलाऊँ बहना, ग्रपनी मिसेज शर्मा ग्रौर मिसेज देशमुख को ही लो ना। पद लेते समय तो फुदक-फुदककर ग्रागे ग्रा गईं···फिर ठण्डी। इधर मैं तो महिला कांग्रेस के लिए सदस्याएँ बनाती घूम रही हूँ ग्रौर वो ग्रभी कहीं बैठी-बैठी गप्पें मार रही होंगी। ग्रौर गप्पें भी क्या बहना, इसकी बुराई तो उसकी बुराई। ग्राप तो जानती ही हैं मिसेज देशमुख तो घुमा-फिराकर बस येई बोलती हैं कि वो बड़ी सुन्दर हैं। ग्रब बताग्रो···क्या नाम से कि···मेंढकी को जुकाम। क्या ? सुन्दर तो हम भी थे बहना, मगर खुद क्यों कहना। लोग खुदइ कह देते हैं। लेकिन मैं पूछती हूँ ग्रपन को कोई ब्यूटी काम्पीटीशन थोड़े ही करना है। ग्रपन को तो कुछ रचनात्मक काम करना है। घर में भी ग्रौर बाहर भी। क्या बतलायें बहना, हमारी लड़कियाँ तो ऐसी कढ़ाई-सिलाई करती हैं कि जो देखे उसकी ग्राँखें फटकर सामने टेबल पर गिर जाएँ। ग्राखिर लड़कियाँ सीखेंगी कहाँ से ? क्या ? कहाँ से सीखेंगी ? क्या नाम से कि···ग्रपनी माँ से ही ना। मैंने

तो सोच लिया है कि जब तक महिला कांग्रेस की सचिव रहूँगी कुछ रचनात्मक काम कराऊँगी। हाय राम···कितनी गर्मी है! बहना, पानी मँगवाओ जरा।"

सावित्री उठी और फ्रिज से पानी की बोतल निकालकर ले आई। श्रीमती कोठारी गटागट दो गिलास पानी पी गई।

···हा ह···अब थोड़ी जान में जान आई। तो बहना, मैं क्या कह रही थी। हाँ, आपकी जैसी···क्या नाम से कि···जागृत महिला को तो कांग्रेस में जरूर शामिल होना चाहिए। नईं···नईं आप अब इंकार मत करना। मैं तो आपसे पहले भी कई बार कह चुकी हूँ। अब देखिए न, मिसेज शर्मा और देशमुख भी तो कह सकती थीं। अरे···सारे रायपुर में पल्टनियाँ परेड कर रही हैं···कुछ सदस्य ही बना लेतीं। क्या? मगर उनको तो गप्पें मारने में और सजने-सँवरने से ही फुरसत नहीं है। मैं सच कहूँ बहना, सजने-सँवरने का शौक तो मुझे भी था मगर अब तो, आप खुद ही देख रही हैं···सादा जीवन अपना लिया है। वो महात्मा जी ने क्या नाम से कि कहा था ना···अब आप तो जानती ही हैं। तो भई, हमने तो आपको सदस्या मान लिया। आप सदस्या बन मर जाइए। अगली बार आपको उपाध्यक्षा बना देंगे।

"देखिए, इस सबकी कोई जरूरत नहीं है।" सावित्री ने संकोच से कहा, "बात दरअसल ये है कि घर के कामकाज से फुरसत नहीं मिलती और फिर···फिर···मुझे राजनीति में कोई रुचि नहीं है।"

"आपको राजनीति में कौन घसीट रहा है बहना। अपन तो रचनात्मक कार्य और समाज-सेवा करेंगे। आप तो खुदइ समझती हैं। रहा घर का काम-धाम तो आपके पास तो अब टाइम ही टाइम है। क्या? लड़के बड़े हो गए और डाक्टर साहब तो इतने व्यस्त आदमी हैं कि बाहर ही ज्यादा रहते होंगे। आप सदस्या बन जाएँगी तो सामाजिक कार्यों में मन भी लगा रहेगा। अब देखिए न, आपकी नलिनी के काण्ड के कारण आप यूँ ही परेशान रहती होंगी। हाय, बड़ा बुरा हुआ बहना। हमने तो

अखबारों में क्या नाम से कि···मुकदमे की खबरें पढ़ी थीं। क्या बतलाया जाय अखबार वाले भी बड़े गैर जिम्मेदार होते हैं। क्या? किसी का घर जले और ये अपने हाथ सेंकते हैं। आप तो खुद्द समझती हैं— तीस पैसे का कागज रोज बाँटने के लिए ये लोग दूसरों के घरों में झाँकते फिरते हैं। हाय, बड़ा बुरा हुआ। मिसेज शर्मा और मिसेज देशमुख को तो बस, चबड-चबड करने का मसाला मिल गया होगा। क्या बतलाएँ बहना, जहाँ जाती हैं वहीं जम के बैठ जाती हैं दोनों। सच में बड़ी चिपकचिल्लो हैं। आजकल नलिनी क्या कर रही है?" श्रीमती कोठारी ने अपने स्थूल शरीर को थोड़ा आगे झुकाकर जिज्ञासा से पूछा।

"क्या करेगी," सावित्री ने गहरी सांस ली। बातों का दौर फिसलकर यहाँ आ जाएगा इसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी।

"हाँ···तो बहना, मैं तो कहती हूँ आपका मन लगा रहेगा। सच में। जिन्दगी में तो पचास दंद लगेइ रहते हैं। अब मैं अपनी बात ही कहूँ। तीनों लड़कों की शादी हुई मगर एक भी बहू सलीके की नहीं आई। क्या? एक भी। घर का काम-धाम सम्हाल लें तो ये आसरा भी नईं है। अकेली जान क्या-क्या देखूं। अगर ये लोग थोड़ा सहारा दे देतीं तो मैं समाज-सेवा अच्छी तरह कर लेती ना। लेकिन यहाँ तो अब दो घड़ी किसी के साथ सुख-दुख की बात करने की फुरसत नईं है। लो, मैं तो भूल गई कि सोमवार को···क्या बतलाऊँ आजकल याददास्त भी कमजोर हो गई है। आखिर दिमाग भी कहाँ तक सम्हाले। घर का भी झमेला और बाहर का भी। उधर मिसेज शर्मा और देशमुख को देखिए न बस घुड़िया जैसा जहाँ मुँह उठाया चल दिए। हाँ तो बहना, मैं कह रही थी सोमवार को हमारी मीटिंग है, जरूर आना। हम तो आपको सदस्या मान ही चुके हैं। अपने शंकर नगर वाले मदनलाल दुबे के यहाँ बैठक होगी ·· चार बजे। मदनलाल दुबे को तो जानती हैं न ··अरे वही वकील साहब। अरे···जिनकी कन्ती, दन्ती, मन्ती तीन लड़कियाँ हैं। बाबा रे बाबा। अरे भई जवानी तो हमें भी आई थी मगर इन लड़कियों को तो बस, पूछोइ

मत !! उनके गुन तो सारे रायपुर में उजागर हैं। क्या लड़कियाँ हैं। राम राम राम ! उनकी माँ भी भई, गजब की बातूनी हैं···टेप रिकार्डर हैं। मगर चन्दा काफी देती हैं इसलिए क्या नाम से कि···उपाध्यक्षा बना दिया है। लो, मैं तो भूलइ गई। सवा चार बजे का टाइप तो मैंने मिसेज कुलकर्णी को दे रखा है और साढ़े चार तो यहीं बज गए। तो अब चलूँ, आप सोमवार को आना जरूर।"

श्रीमती कोठारी ने घुटनों पर हाथों का जोर लगाकर किसी तरह अपने वजनदार शरीर को काँखकर उठाया और हाँफते हुए नमस्कार करके दरवाजे की ओर बढ़ गईं। सावित्री इस गजगामिनी को थुलथुलाते हुए जाते देखती रही। कम्पाउंड के गेट तक पहुँचते-पहुँचते जैसे उन्हें फिर कुछ याद आया। वे ठिठकीं किन्तु शायद मुड़ने की तकलीफ की बात सोचकर उन्होंने मुड़ने का इरादा मुल्तवी कर दिया।

इसके पहले सावित्री ने कभी भी इस तरह के प्रस्ताव पर गम्भीरता-पूर्वक सोचा नहीं था। उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि उसके जीवन की धारा पारिवारिक दायरे के बाहर भी कभी बहकर निकलेगी। बचपन से ही उसके मस्तिष्क में सुखी और सार्थक जीवन की कल्पना केवल इतनी थी कि पारिवारिक जीवन की वह केन्द्र-बिन्दु हो। भाग्य की सत्ता को स्वीकार करते हुए भी उसके मन ने डाक्टर के साथ अपनी निरन्तर बढ़ती दूरी को केवल किस्मत नहीं माना था। ईंट-पत्थरों की चारदीवारी के अतिरिक्त मानसिक सुरक्षा और शारीरिक निकटता के चरम बिन्दु पर आन्तरिक जुड़ाव को भी वह अपना अधिकार मानती थी। उसे अपने पर कितनी···कितनी बार रोष हुआ कि उसने जो कुछ भी अपना अधिकार माना उसके विषय में वह कभी कुछ कह क्यों नहीं सकी। और फिर पता नहीं कब उसके दिल के चारों ओर एक घेरा बनना शुरू हुआ था। जब उस घेरे की रेखाएँ स्पष्ट हुईं तब उसमें देखा कि उस घेरे में उसके साथ केवल उसके बच्चे हैं।

बचपन में उसने राबिन्सन क्रूसो की कहानी पढ़ी थी। राबिन्सन

क्तुसो के एकाकीपन की व्यथा को तब वह समझ नहीं पाई थी। अब उसे भी कभी-कभी लगता था कि एक असीम विस्तार तक लहराते समुद्र के बीच स्थित किसी टापू पर वह जी रही है। संदीप और आलोक अपनी-अपनी नौकरियों पर जा चुके थे। नलिनी अपने आपमें बन्द घोंघे की तरह स्पन्दहीन हो गई थी। डाक्टर की अपनी अलग दुनिया है—मरीज और चिकित्सा विज्ञान की। आज तो वारीश के कारण फिर भी उसके जीवन में सम्बन्ध नाम की कोई चीज थी पर कुछ वर्षों के बाद क्या होगा। वारीश का इंजीनियरिंग का अन्तिम वर्ष है। सम्बन्धों के नाम पर कुछ औपचारिकताओं को ढोने की विवशता को जीवन मानना क्या जीने का बहुत कमजोर बहाना नहीं होगा?

रविवार तक सावित्री को लगने लगा कि सामाजिक कार्य जीवन को कहीं उलझाए रखने के लिए बुरा खयाल नहीं है। एक बार यह इच्छा भी हुई कि वह डाक्टर से पूछ ले किन्तु फिर उसने सोचा कि पूछकर भी क्या होगा। हर सुख-दुख को उसने निविड़ एकाकीपन में भोगा था तो अपने जीवन को व्यस्त या कुछ अधिक सार्थक बनाने के बहाने की तलाश भी उसे डाक्टर की सहायता के बिना करनी होगी।

सोमवार को मीटिंग में जाते हुए उसे अजीब लगा जैसे किसी अनिश्चित उद्देश्य की यात्रा पर बेमन से जाते हुए किसी को लगता है। मीटिंग में अच्छा-खासा चखड़याव था। मीटिंग से प्रारम्भ से अन्त तक करीब-करीब सारी सदस्याएँ एकसाथ बोलती रहीं। श्रीमती कोठारी के द्वारा बोले गए 'सृजनात्मक कार्य' और 'समाज सेवा' बीच-बीच में सुनाई पड़ जाते थे। एक बार इन शब्दों को सुनकर उसके पास बैठी एक महिला ने दूसरी से फुसफुसाकर कहा, "अपन तो अभी भी कुछ सृजन कर सकते हैं लेकिन इनकी तो एज पार हो चुकी है।" अगल-बगल की औरतें मुँह में कपड़ा ठूँस-ठूँसकर एक-दूसरे पर हँसते हुए गिरने लगीं।

यह भाँपने में सावित्री को देर नहीं लगी कि यह तो खा-खाकर मुटाई हुई औरतों का समूह है। सम्पन्न घरानों की खाली औ...

समय काटने का एक सम्भ्रान्त साधन मात्र है। अखबारी सुर्खियों में नाम चढ़ने की ललक, परिचय का दायरा बढ़ाने की महत्वाकांक्षा और खाली समय में कुछ भी करने की इच्छा का संगम ही इस सृजनात्मक कार्य की धुरी है। खादी और रेशमी साड़ियों के इस मेले में गहने और फैशन से लेकर फिल्म की चर्चा बीच-बीच में होती रही और सबसे अधिक प्रसन्न और आत्मीय वातावरण तब बन गया जब गुलाब जामुन और भुजिए की प्लेट के साथ चाय आ गई। सावित्री को इस इन्द्रधनुषी बैठक में नयेपन का बोध हुआ। उसे लगा कि समय काटने के लिए यह सब उसके लिए भी बुरा नहीं है।

जब वह घर लौटी तब रात को नौ बज गए थे। डाक्टर आ गए थे और शायद उसकी प्रतीक्षा में थे···शायद। अपनी आरामदेह कुर्सी में, अपनी विशिष्ट मुद्रा में डाक्टर बैठे थे। उनके ओठों में सिगरेट फंसी थी और वे ब्रिटिश मेडिकल जरनल में प्रकाशित अपने लेख पर आँखें फिरा रहे थे। ऐसा अवसर शायद पहली बार आया था कि घर में उपस्थित डाक्टर ने बाहर से लौटती हुई सावित्री को देखा हो। पत्रिका से आँखें उठाकर उन्होंने पूछा, "कहाँ गई थीं?" एक उत्सुकताहीन भरी-सी जिज्ञासा!

"एक मीटिंग में गई थी", सावित्री ने घर में पहनने की साड़ी उठाते हुए कहा।

"मीटिंग में! काहे की मीटिंग?"

सावित्री ने सपाट स्वर में केवल सूचना दी, "महिला कांग्रेस की मीटिंग। मैं सदस्या बन गई हूं।"

"महिला कांग्रेस! तुम!! तुम···कांग्रेस में शामिल हो गई हो!" डाक्टर ने बेहद आश्चर्य से पूछा, "···यानी···कांग्रेस में···तुम।"

"खाना खा लिया आपने?" सावित्री ने साड़ी बदलते हुए पूछा। स्वर में ठण्डी निर्लिप्तता थी।

"नहीं खाया है अभी। थाली लगाओ।" डाक्टर ने सिगरेट ऐशट्रे

में रगड़ी ।

"अभी लगाती हूँ," सावित्री ने डाक्टर की ओर देखे बिना ही कहा और बाथरूम की ओर चली गई ।

डाक्टर कुछ क्षणों तक सावित्री की ओर देखते रहे । उनकी स्लेटी पत्थर जैसी आँखों में आश्चर्य काई की तरह उग आया था । स्ट्रेन्ज··· कन्धे उचकाकर उन्होंने पत्रिका के पन्ने पलटकर विषय-सूची पर दृष्टि दौड़ाई···ओह, वंडरफुल···हार्ट ट्रांसप्लान्टेशन की समस्याओं पर डाक्टर बर्नार्ड का लेख था । माई गाड, डाक्टर डेण्टल कूली का लेख भी !! तो यह अंक तो सम्हालकर रखने लायक है । साउथ अफ्रीका और अमरीका के इन डाक्टरों में हजारों मील की दूरी के उपरान्त भी कैसी स्वस्थ होड़ लगी हुई है ! हृदय प्रतिरोपण के क्षेत्र में दोनों ही एक-दूसरे से आगे बढने को बेचैन हैं ! दुनिया में यदि घृणित राजनीति से प्रेरित मौत के सौदागरों में होड लगी हुई है तो कहीं जीवनदाताओं के बीच स्पर्धा पर कितना अन्तर है उद्देश्य का । डाक्टर मेहता ने दूसरी सिगरेट सुलगाई । वे भूल चुके थे कि उन्हें भोजन करना है ।

डाक्टर थकावट का अनुभव कर रहे थे ।

आज उन्होंने एक मरीज के हृदय में नकली वाल्व लगाने का दूसरा सफल आपरेशन किया था । जब उन्होंने ऐसा आपरेशन पहली बार किया था तब अखबारों ने स्पेशल कालम छापे थे । अखबारों के रविवारीय संस्करणों में व्यक्ति-चर्चा कालम में उनकी भी चर्चाएँ हुई थीं । यूँ अस्पताल में आज भी तहलका था । वे अस्पताल के जिस कारीडोर से निकलते थे वहीं उन्हें मुबारकबाद देने वाले घेर लेते थे । उस मुबारकबाद में केवल औपचारिकता की गर्मी नहीं थी बल्कि एक आदर भरा भय भी था । मेडिकल कालेज के युवा डाक्टरों के चेहरों पर उनके लिए श्रद्धा थी । डाक्टर को यह सब अच्छा लगा था···बेहद सुलकर । किन्तु उन्होंने आत्मतृप्ति के भाव को चेहरे पर फैल जाने की अनुमति नहीं दी ।

वे दो बजे घर लौटे थे। नहा-खाकर अपनी आरामकुर्सी पर बैठकर वे सिगरेट के हल्के-हल्के कशों का आनन्द ले रहे थे। उनकी आँखें आधी झँप आई थीं और वे सामने देखकर भी वस्तुतः कहीं देख नहीं रहे थे। वे अभी भी आपरेशन की बात सोच रहे थे। कैसी अजीब मशीन है मानव शरीर···और उस मशीन का एक पुर्जा हृदय। प्रकृति ने इतनी सूक्ष्मता और कुशलता से गढ़ा है उसे कि मनुष्य को उसके विकल्प के रूप में कृत्रिम पुर्जे बनाने में समय लगेगा। पर मनुष्य की हार न मानने वाली मेधा उतने ही संवेदनशील अवयव अवश्य ही तैयार कर लेगी। आर्यभट्ट से लेकर यूरीगागरिन तक का और पत्थर के अनगढ़ टुकड़े के औजार से लेकर अजंता एलोरा और एम्पायर स्टेट बिल्डिंग बनाने का मानवीय इतिहास आश्वस्त करने वाला है। अनुसंधान के क्षेत्र में आज का अधूरापन कल नहीं रहेगा। प्रकृति के समानान्तर बनाई गई मानव की इस निजी दुनिया में पूर्णता अवश्य आएगी। कुछ पीढ़ियाँ खपेंगी और मनुष्य के सामूहिक प्रयास से मानव-शरीर की सूक्ष्म से सूक्ष्म क्रिया को परखा और पहचाना जा सकेगा। रूप ने डाक्टर लेंदाउ के तकरीबन टूटे-फूटे शरीर को कुशलता से जोड़कर फिर से उन्हें जिला दिया था। तब बिखराव के निकट पहुँचकर फिर से स्वस्थ और सम्पूर्ण हो जाने वाले उनके शरीर ने आदमी के इस महान अभियान में फिर अपना योगदान दिया था। नये हाथ-पैर, नया रक्त, नया फेफड़ा, नया हृदय और सम्भवतः नया मस्तिष्क भी मनुष्य की किसी भाग्यशाली पीढ़ी को दुकान में बिकने वाले सौन्दर्य प्रसाधनों की तरह आसानी से मिल सकेंगे।

सावित्री जब कमरे से गुजरी तो डाक्टर की तन्द्रा भंग हुई। सावित्री ने खादी की साड़ी पहन रखी थी और स्पष्ट लग रहा था कि वह बाहर जा रही है। डाक्टर ने केवल पूछने के लिए ही पूछा, "कहीं जा रही हो?"

सावित्री क्षण-भर ठिठकी। उसकी इच्छा हुई कि कह दे कि उसके कहीं आने-जाने से क्या अन्तर पड़ता है पर उसने अपने को जप्त करके

कहा, "महिला समिति का कार्यक्रम है।"

डाक्टर के जमे हुए बर्फ जैसे चेहरे पर व्यंग्य की छोटी-सी दरार उभरी, "नेतागिरी करने जा रही हो।"

क्षण-भर की चुप्पी, फिर सावित्री का निस्पृह उत्तर, "आपको जैसा लगे, वैसा सोचिए। घर में नलिनी है, आपको जब चाय पीनी हो बनवा लीजिएगा।"

जाती हुई सावित्री को डाक्टर ने अधमुँदी आँखों से ही देखा। सावित्री का शरीर थोड़ा स्थूल हो गया था और बालों में सफेदी आने लगी थी। पर यह नहीं'''डाक्टर किसी और चीज को पकड़ने का प्रयास कर रहे थे। कौन-सा परिवर्तन आया है सावित्री में। उम्र तो कोई खास बात नहीं है। हालांकि सावित्री को देखकर डाक्टर को आभास हो रहा था कि वे भी बूढ़े हो रहे हैं। सम्भवतः आज की इस थकावट का कारण भी बढ़ती हुई उम्र ही हो।'''उम्र पर काबू पा लेगा मनुष्य एक दिन। मानव-शरीर के कोषों के छीजने के कारण का पता लगने भर की देर है कि मनुष्य की अपराजेय जिज्ञासा उस रहस्यमय परदे को उठाने के लिए जूझने लगेगी। डाक्टर फिर उसी अर्धजागृत अवस्था में पहुँच जाते हैं।

चार बजे के करीब उन्हें लगा कि वे थोड़ी-बहुत झपकी भी ले चुके थे। उन्होंने उठकर हाथ-मुँह धोया और सिगरेट सुलगा ली। अब उन्हें चाय की तलब बुरी तरह सता रही थी। वे नलिनी को आवाज देते-देते रुक गए। यह सोचकर उन्हें अजीब लगा कि साल-भर से अधिक बीत चुका है उन्होंने नलिनी को खुद होकर पुकारा नहीं है। वे उठकर नलिनी के कमरे की ओर बढ़े। सोचा कि आमना-सामना होने पर नलिनी से बात करना सरल होगा। नलिनी के कमरे में खामोशी थी। दरवाजे के पास खड़े होकर उन्होंने देखा कि नलिनी सो रही थी। डाक्टर बिना कुछ सोचे, अनजाने ही कमरे में पहुँचकर नलिनी के पलंग के पास पहुँचकर रुक गए।

उन्होंने नलिनी को गौर से देखा । नलिनी का बेहद गोरा रंग कुछ फीका पड़ गया था और उसकी आँखों के नीचे काले घेरे बन गए थे । विनोद के साथ हुए उसके काण्ड के बाद एक अजीब-सा अपराधी भाव उसके चेहरे का स्थायी अंग बन गया था जो अभी सोते समय भी उसके चेहरे पर चिपका हुआ था । उनकी इच्छा हुई कि उसके उलझे हुए बालों को सहला दें । पर वे ऐसा नहीं कर पाए तो पास रखी हुई कुर्सी पर बैठ गए । लम्बे अर्से से नलिनी ने डाक्टर के सामने आना छोड़ रखा था । यदि कभी वह सामने आ भी जाती थी तो उसकी आँखों में एक अपराधभाव-सा उभरने लगता था और वह जल्दी से सामने से हट जाती थी । बचपन से ही वह शौकीन तबियत की थी''घर में भी टिपटाप रहनेवाली । उपेक्षा की हद तक अपनाई गई सादगी में, घृणा, दुःख और हीनता के भाव से जकड़ी संन्यासिनी की तरह दिखलाई देने वाली यह नलिनी तो नलिनी की छाया भर लग रही थी ।

यों थोड़ी देर के लिए उन्होंने नलिनी को पूरी तरह सजे हुए देखा था—माँग में सिंदूर भरे हुए । उन्होंने याद करने का प्रयास किया कि कैसी लग रही थी नलिनी । उन्हें याद नहीं आया । याद आया केवल इतना था कि जिस तरह माचिस की तीली डिबिया की रगड़ खाने से जल उठती है वैसा ही उनका शरीर जैसे जल उठा था । एस० पी० को लेकर वे महासमुन्द गए थे और नलिनी को विनोद के घर से अपने साथ ले आए थे । विनोद ने विरोध करते हुए एस० पी० से कहा था, "आप मेरी पत्नी को जबरदस्ती नहीं ले जा सकते । हम दोनों ने मन्दिर में शादी कर ली है ।"

उन्होंने घूरकर कहा था, "किसकी इजाजत से ? मेरी बच्ची को बहकाकर ले आया है और ऊपर से डींग हाँक रहा है । चलो नलिनी ।"

घबराई हुई नलिनी ने थूक निगलकर, अव्यवस्थित स्वर में कहा, "मैं नहीं जाऊँगी ।"

डाक्टर की इच्छा हुई थी कि''कि''इस समय भी वे वहीं खोद

पाए थे कि किस भीषण सजा की वे कल्पना करें। नलिनी जब से भागी थी तब से वे निरन्तर यही सोचते रहे थे कि नलिनी जरूर ही बहकावे में आ गई होगी। आखिर क्या उमर है नलिनी की'''और जरूर ही उस हरामखोर विनोद ने फुसला लिया होगा उसे। वे सोचते थे कि एक-दो घुड़की में मामला ठीक हो जाएगा और नलिनी लौट आएगी। जब नलिनी ने आने से इंकार किया तो उन्हें लगा था कि उनके अस्तित्व को ही पूरी तरह नकार दिया गया है। वे तकरीबन खींचते हुए नलिनी को अपने साथ ले आए थे।

कुछ स्वभावतः और कुछ सायास, जिस आभिजात्य को उन्होंने अपने व्यक्तित्व का अंग बना लिया था तथा जिसके लिए वे विख्यात भी थे उनका वही आभिजात्य न जाने कैसे भाप की तरह उड़ गया था। घर आकर उन्होने नलिनी पर हाथ उठा दिया था। सावित्री और आलोक ने बीच-बचाव न किया होता तो पता नहीं क्या होता। फिर भी उन्होंने नलिनी को कमरे में बन्द कर दिया था और बाद में भी उस पर कड़ी निगरानी रखी थी। उन दिनों वे गुस्से में सुलगते रहते थे। घर के सभी सदस्य उनसे इस बात पर तो सहमत थे कि नलिनी और विनोद को मन-मानी करने की छूट नहीं दी जा सकती किन्तु अपने और नलिनी के बीच चलते हुए शीतयुद्ध में जब परिवार के सदस्यों की प्रच्छन्न सहानुभूति वे नलिनी की ओर देखते तो उनका क्रोध भकभकाने लगता था।

विनोद ने केस दायर कर दिया था जो हाई कोर्ट तक चला था। विनोद केस हार गया था पर डाक्टर को अपनी जीत की कोई प्रसन्नता नहीं हुई थी। जब तक केस चला, अंचल के अखबारों की सुर्खियाँ उससे भरी रहती। मेहता परिवार की ट्रेजेडी पान ठेलों पर बतियाने का मसाला बन चुकी थी। जब केस समाप्त हुआ तब तक नलिनी की आँखों में चमक बुझ चुकी थी। स्वयं उनकी सुलगती हुई प्रतिहिंसा जब केस जीतकर शान्त हो गई तब उन्होने अनुभव किया था कि उसकी राख में स्वयं उनकी प्रतिमा कुछ धुंधली हो गई थी।

उस घटना की खौफनाक छाया ने सबको ग्रस लिया था। उनकी ख्याति और पैसे की शक्ति भी उस छाया से कुण्ठित हो गई थी। उन्होंने नलिनी के विवाह का प्रयास किया था किन्तु वे जहाँ भी जाते थे वहाँ पथराए चेहरे और औपचारिकता से भरी हुई सतर्क और चालाक बातें उन्हें सुनने को मिली थीं। वह उनके अकेले का प्रयास था। सावित्री के साथ महीनों उनकी बातचीत नहीं हुई थी। पहले भी कम ही होती थी किन्तु इस बीच तो दोनों के बीच कुछ ऐसा कुहरीला घनीभूत हो गया था कि दोनों ही एक-दूसरे को अस्पष्ट दिखलाई देने लगे थे। तभी एक दिन सावित्री ने उन्हें सूचना दी थी। आग्रह-अनाग्रह से परे, किसी भी प्रतिक्रिया से बेपरवाह वह मात्र एक सूचना थी कि नलिनी ने कहा है कि यदि उसका विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध करने का प्रयास किया गया तो वह आत्महत्या कर लेगी। उन्होंने बौखलाकर सावित्री की ओर देखा था और दोनों की दृष्टि दो दिशाओं से फेंके गए पत्थर की तरह टकराकर छिटक गई थी।

···अचानक सोते-सोते नलिनी ने करवट बदली। डाक्टर अपने को इस स्थिति में पकड़े जाने के भय से पीछे हटकर कुर्सी पर बैठ गए और उन्होंने दूसरी सिगरेट सुलगा ली। भावुकता में डूबे हुए मानवीय सम्बन्ध उन्हें फिल्मी लगते थे। शुरू से ही बच्चों को इधर-उधर घुमाने का ना तो उनके पास समय था और ना ही इसकी उन्होंने कभी आवश्यकता समझी थी। पर नलिनी को कभी-कभार वे अपनी कार में घुमाने ले जाते थे तब उनके दूसरे बच्चे चोरनिगाहों से देखा करते थे। नलिनी बचपन में तो एकदम जापानी गुड़िया-सी लगती थी। रंग तो उसका अभी भी गोरा था लेकिन तब तो वह एकदम गुलाबी थी।

एक बार वे नलिनी को अपने साथ अस्पताल भी ले गए थे। उन्हें आज भी याद था कि उनके चेम्बर से वह जल्दी ही ऊब गई थी। एक्सरे मशीन और कार्डियोग्राम को देख-दूखकर वह बाहरी कमरे में चली गई थी जो कि मरीजों का वेटिंग-रूम था। वे किसी मरीज में व्यस्त थे कि

अचानक वेटिंग-रूम से किसी के चिल्लाने की आवाज आई। वे हड़बड़ा-कर, चेम्बर छोड़कर बाहर आये थे। उन्हें आशंका हुई थी कि शायद किसी प्रतीक्षारत मरीज की हालत अचानक खराब हो गई होगी पर वहाँ माजरा दूसरा था। नलिनी मरीजो की बेंच के पीछे पहुँचकर आहिस्ते से बेंच पर चढ़ गई थी और उसने एक आदमी के कान में अचानक काट दिया था। उस मरीज के चिल्ला पड़ने से अगल-बगल के लोग भी घबरा गए थे और नलिनी तो बिलकुल ही सहम गई थी। मरीज को कान दबाए देखकर उन्हें माजरा समझ में आ गया था। उन दिनों नलिनी ने अपने भाइयों को भी कभी-कभार काटा था। उन्होंने जब नलिनी को डाँटा तो वह रोने लगी थी। पर सच तो यह है कि वे मन ही मन हँसे थे।

...आज भी उनके ओठों पर हँसी फूटने को हुई। सामने सोई नलिनी के दुर्बल चेहरे को देखकर उन्हें अफसोस हुआ और उनकी फिर इच्छा हो आई कि उसके माथे पर झुक आई लट को वे सहला दें। अनजाने में ही शायद उनका हाथ बढ़ा भी था लेकिन तभी नलिनी की आँखें खुल गईं। उसकी आँखों में पहले आश्चर्य उभरा फिर विरक्ति...या भय ...या कुछ और...पर क्षण-भर में उन आँखों में जो उभरा उससे डाक्टर सकते में आ गए। नलिनी झटके से उठी और साड़ी सम्हालती हुई कमरे से बाहर निकल गई।

डाक्टर का बढ़ा हुआ हाथ वैसा ही रह गया और उनके माथे पर ढेर-सी सिकुड़नें उभर आईं। तो, उनकी लड़की उनसे इतनी घृणा करती है कि उनकी इतनी निकटता भी उसे सह्य नहीं। क्या उन्हें नलिनी से बात करनी चाहिए? फिर उन्हें लगा कि वे समय खराब कर रहे हैं। बीमारी, कष्टों और घावों से भरे संसार में पारिवारिक रिश्तों के आप-रेशन और मरहम पट्टी इतने...इतने आवश्यक नहीं है कि मनुष्य अपनी प्रतिभा, क्षमता और कीमती समय को पूरी तरह उसे समर्पित कर दे। सीमित जीवनी शक्ति और शरीर सामर्थ्य से युक्त अनिश्चित कालीन

मानव-जीवन की चरम सार्थकता किसमें है ? ये छोटी-छोटी दरारें और उन दरारों को पाटने के प्रयास, पारिवारिक स्तर की छोटी-छोटी मान-मनौवल और अपेक्षाएँ-उपेक्षाएँ ही क्या कर्मरत मनुष्य की मंजिल है ? उन्हें अधिक से अधिक रास्ते का पड़ाव कह सकते हैं। किन्तु क्या इन्हें पड़ाव भी होना चाहिए ?···डाक्टर सिगरेट फेंककर झटके से उठ खड़े हुए। साढ़े पाँच बजे उन्हें रोटरी क्लब में हृदयरोग पर व्याख्यान देना था।

कार जानकीप्रसाद के घर के सामने रुकी।

राकेश ने पहचाना कि कार डाक्टर की है। हाथ की पत्रिका सेन्टर पीस पर पटककर वह अन्दर की तरफ भागा। जानकीप्रसाद भीतर के कमरे में लेटे हुए अखबार देख रहे थे और कमला आरामकुर्सी पर बैठी हुई बुनाई कर रही थी। वह रविवार था और जानकीप्रसाद एक झपकी लेकर अभी-अभी जागे थे।

राकेश ने तेजी से कमरे में घुसकर कहा, "मौसाजी आये हैं !"

जानकीप्रसाद ने अखबार मुँह के सामने से हटाकर आश्चर्य से पूछा, "डाक्टर ! अपने डाक्टर हरिचरन ?"

"जी हाँ, अभी-अभी गाड़ी रुकी है," राकेश ने उत्तेजना से हाँफते हुए कहा।

कमला ने हाथ का काम छोड़कर पति के चेहरे की ओर देखा। जानकीप्रसाद के चेहरे पर बनने-बिगड़ने वाली प्रत्येक रेखा को गौर से पढ़ने का उसने प्रयास किया। जानकीप्रसाद के चेहरे पर उभर आयी विरक्ति और भौंहों पर पड़ने वाले बल को देखकर वह समझ गयी कि उन्हें डाक्टर के यहाँ की पिछली घटना याद आ गई होगी। उसकी अपेक्षा के अनुकूल, जानकीप्रसाद थोड़ी देर तक छत को घूरते रहे फिर उसकी ओर मुड़कर उन्होंने कहा, "तुम जाकर मिल लो अपने जीजाजी से। कह देना मैं घर में नहीं हूँ।"

कमला ने उठते हुए कहा, "अजी नहीं, ऐसा भला अच्छा लगता है।"

मुँह बनाकर कड़ुवे स्वर में जानकीप्रसाद ने कहा, "मुझे नहीं मिलना है उस बेहूदे आदमी से। क्या समझता है अपने-आपको।"

'देखो जी, घर आये मेहमान से अगर अपन अच्छा व्यवहार न करें तो···"

"ऐसा उनको भी तो सोचना चाहिए था।" जानकीप्रसाद अभी भी इसी दुविधा में बिस्तर पर पड़े हुए थे कि डाक्टर से मिलना चाहिए या नहीं।

"अब उठ भी जाइए। उनका तो विचित्र स्वभाव है ही···और फिर उस समय तो वह बौरा गये थे। अपन अगर वैसा ही व्यवहार करने लगे तो उनमें और अपन में क्या अन्तर रह जायगा?" कमला ने पास आकर समझाते हुए उनकी बाँह छूकर आग्रह किया, "अब उठो भी।"

जानकीप्रसाद शायद अपने-आपको मनाये जाने की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। उठते हुए वे बोले, "ठीक है, तुम कहती हो तो···"

तभी दूसरी बार कॉलबेल बजी तो कमला राकेश की ओर मुड़कर बोली, "यहाँ खड़े-खड़े क्या देख रहे हो? चलकर बैठाओ अपने मौसा को।"

जानकीप्रसाद और कमला जब बैठक में पहुँचे तब डाक्टर अखबार उलट-पलट रहे थे। कमला कमरे में घुसते ही नमस्कार कर बोली, "बहुत दिनों बाद इधर आये हैं जीजाजी।"

डाक्टर ने अपने स्वाभाविक गम्भीर स्वर में कहा, "हाँ, बहुत व्यस्त था। आज थोड़ा समय था तो सोचा चलो तुम्हारे यहाँ हो लें। ये भी तो उधर बहुत दिनों से नहीं आये।"

जानकीप्रसाद समझ नहीं पा रहे थे कि उन्हें किस तरह रिएक्ट करना चाहिए। डाक्टर एकदम सहज दिखलाई दे रहे थे और उनके चेहरे पर पिछली अप्रिय भेंट की कोई परछाई नहीं दिखलाई पड़ रही थी। जैसे

इस बीच कुछ घटित ही न हुआ हो। यहाँ स्वयं आकर और इस तरह सहज व्यवहार करके वे शायद पिछले सम्बन्धों को सामान्य बनाना चाहते हैं··· जानकीप्रसाद ने सोचा···या सचमुच ही वे भावावेश में आकर गलत व्यवहार करके उसे भूल भी चुके हैं। जो भी हो किन्तु जानकीप्रसाद के अहम् पर शीतल लेप जैसा लग चुका था। डाक्टर की बात पर वे बिना कारण ही हँसने लगे, "हैं···हैं हैं हैं···वो ऐसा है कि···क्या नाम से कि एनाउ है सब। अरे भाई कमला···चाय पिलवाओ अपने जीजाजी को।

कमला अब वातावरण की सहजता से आश्वस्त हो गई थी इसलिए वह उत्साह से उठ खड़ी हुई। उसने ऐशट्रे उठाकर डाक्टर के पास रख दिया और भीतर चली गई। जब वह चाय लेकर लौटी तो बैठक में आने से पहले ही उसने सुना कि डाक्टर अपनी सधी आवाज में कुछ कह रहे हैं। कमला को मालूम था कि चिकित्सा-विज्ञान के नवीन अनुसंधानों पर बात करना डाक्टर की आदत है। जब तक उसने चाय तैयार की, सिगरेट का कश लेते हुए डाक्टर ने अपनी बात पूरी की—"दुनिया पहले कई वर्षों में इतनी नहीं बदलती थी जितनी आज एक दिन में बदल जाती है। हार्ट ट्रांसप्लांटेशन के बाद, आप जानते हैं, मृत्यु की परिभाषा बदल गई है। कई देशों में विचार हो रहा है कि अब मृत्यु की परिभाषा क्या होगी? जब मनुष्य मृत्यु को भी वश में कर लेगा तब मनुष्य के आपसी सम्बन्धों की व्याख्या बिलकुल ही दूसरी होगी।"

जानकीप्रसाद ने बात काटी, "देखिए, मानवीय सम्बन्ध तो हजारों साल से नहीं बदले हैं। अनुभूतियों और रिश्तों की परख शायद आदमी को एक दैवी वरदान है।"

चाय की चुस्की लेकर डाक्टर ने उतनी ही गम्भीरता से फिर कहा, "रिश्ते जैसी सहज और साधारण बात को दैवी चमत्कार कहकर दार्शनिकों और साहित्यकारों ने उसे जबरन रहस्यमय बना दिया है।"

"हाँ···शायद दार्शनिकों ने कुछ अधिक खींचतान की है लेकिन भाई साहब यह विषय केवल वैज्ञानिक विश्लेषण का भी नहीं है।"

डाक्टर के ओठों पर बड़ी हलकी व्यंग्य-भरी मुस्कान उभरी, "सही मानी में यह इतना महत्वपूर्ण विषय है ही नहीं कि इस पर माथापच्ची की जाय। रिश्ते की कानूनी परिभाषा ही शायद अनिवार्य आवश्यकता है क्योंकि सामाजिक ढांचा कैसा भी क्यों न बदले, कुछ प्रश्नों के सुलझाने की आवश्यकता हमेशा रहेगी। सम्बन्ध सामाजिक आवश्यकता है कोई दैवी चमत्कार नहीं है। आदमी इससे निर्लिप्त रहकर अपना कार्य करता रहे यही अच्छा है। संसार जिस गति से बढ़ रहा है और उसे जिस गति से बढ़ना चाहिए उसके लिए जरूरी है कि आदमी इन भावुक प्रश्नों में न उलझे।"

"ऐसा है डाक्टर, सामाजिक जीवन में कर्तव्य निर्वाह निर्लिप्त रहकर किया जाना चाहिए लेकिन निजी जीवन में सम्बन्ध भावना की मांग करते हैं।"

"आप तो गीता बांच रहे हैं," चाय का प्याला रखते हुए डाक्टर ने चोट की।

इस गम्भीर वार्ता के बीच से उठकर कमला अन्दर जाकर पुनः वापस आ चुकी थी। मीडियम साइज़ की केतली डाक्टर के बगल में टेबल पर रखते हुए उसने कहा, "चर्चा बड़ी गरिष्ट हो गई है जीजाजी, हजम नहीं हो पायेगी। और चाय लीजिए।"

"देखा आपने।" जानकीप्रसाद ने हंसकर कहा, "औरतों की हर बात में रसोईघर का टच रहता ही है।"

डाक्टर ने अपने खाली प्याले को फिर से भरा और एक उचटती-सी दृष्टि दोनों पर डालकर कहा, "आप लोग भी लीजिए ना। इसमें और है।"

जानकीप्रसाद और कमला जानते थे कि यह आमन्त्रण एक औपचारिकता मात्र है और डाक्टर जानते थे कि उनके शिष्टाचार प्रदर्शन से उन्हें कोई घाटा होनेवाला नहीं था। कमला ने कहा, "आप लीजिए, आपके लिए ही लाई हूं।"

"ऐसा।" डाक्टर के चेहरे पर सन्तोष झलका।

चाय का भरपूर डोज़ था इसलिए गम्भीर चर्चा की सम्भावना का अनुमान करते हुए कमला ने सोचा कि घरेलू किस्म की जिज्ञासाओं का समाधान उसे पहले ही कर लेना चाहिए। उसने पूछा, "जीजी कैसी हैं?"

"जीजी।" डाक्टर ने सिगरेट का भरपूर कश लिया। उनके चेहरे की भावहीनता वैसी ही कायम रही, "अच्छी ही होंगी। नेता हो गई हैं आजकल।"

कमला समझ नहीं पाई कि डाक्टर व्यंग्य कर रहे हैं, विरक्ति का प्रदर्शन कर रहे हैं या केवल सूचना दे रहे हैं। क्षण-भर की चुप्पी के बाद उसने फिर पूछा, "संदीप और आलोक मजे में हैं? चिट्ठियाँ तो आती ही होंगी।"

डाक्टर ने क्षण-भर परेशान नजरों से कमला की ओर देखा फिर कन्धे उचकाकर कहा, "मजे में ही होंगे···और चिट्ठियां···अब भई, आती ही होंगी।"

"वाह जीजाजी। इतने व्यस्त रहते हैं आप कि घर के लोगों के बारे में भी आपको कुछ होश नहीं है।" कमला ने कहा।

"ऐसा है···कि···ये लोग बीमार नहीं हैं और किसी तकलीफ में भी नहीं हैं तो इसका मतलब है कि ठीक ही होंगे।" डाक्टर ने नई सिगरेट जलाई।

"फारमूला तो आपका बड़ा जोरदार है···" जानकीप्रसाद कुछ और कह पाते कि उनके पड़ोसी रिटायर्ड एक्साइज़ इन्स्पेक्टर जुगलकिशोर शर्मा दरवाजे पर दिखलाई दिये। जानकीप्रसाद ने उठकर उनका स्वागत किया। शर्माजी ने बड़ी गर्मजोशी से डाक्टर को नमस्कार किया पर डाक्टर ने अपनी आदत के अनुसार, बिना बोले गम्भीरता से अपना सिर भर हिला दिया। इससे पहले कि बातचीत की दिशा कहीं की कहीं मुड़ जाती, कमला ने डाक्टर से कहा, "जीजाजी, राकेश की तबियत आज-

कल नरम-गरम रहती है। उसे आप चेक कर लीजिए तो हम लोगों को सन्तोष हो जाएगा।"

"कहाँ है राकेश। बुलाओ।" डाक्टर मेहता की गम्भीर दृष्टि में उभरती व्यग्रता और अपने आस-पास के माहौल से निर्लिप्त रहने वाले उनके चेहरे पर आई मुस्तैदी से कमरे का हर व्यक्ति प्रभावित हुआ। कमला ने पुकारा, "राकेश!"

शर्माजी सीने पर दोनों हाथ बाँधकर, जमीन पर नब्बे अंश का कोण बनाकर सोफे पर विराज चुके थे। शरीर को स्थिर रखकर, उन्होंने सिर को बेवजह थोड़ा-सा ऊपर-नीचे हिलाया। सामने बिना किसी को देखे, आश्वस्त से होकर मुस्कराये और नाक से हवा निकालते हुए कहा, "हूँ..."

राकेश कमरे मे घुसा और डाक्टर ने चाय की आखिरी चुस्की लेकर कप को परे सरका दिया। राकेश को अपने सामने स्टूल पर बैठाकर, डाक्टर ने कमला से पूछा, "किसी और को भी दिखलाया था?" प्रिस्क्रिप्शन तो होगा?"

कमला ने प्रिस्क्रिप्शन् दिया और डाक्टर उसे गौर से देखने लगे। इस बीच शर्माजी ने अपनी पड़ताल शुरू कर दी थी, "बीमार-ईमार था क्या?"

"नहीं...यूँ ही थोड़ा कमजोर दिखता है कुछ दिनों से।" जानकीप्रसाद ने छोटा-सा उत्तर दिया।

"अच्छा...अच्छा", शर्माजी ने अकड़ी गर्दन को ऊपर-नीचे हिलाकर फिर पूछा, "सर्दी-जुकाम भी रहता है क्या?"

"नहीं..."

"अच्छा...पेट-वेट तो ठीक रहता है?"

इससे पहले कि जानकीप्रसाद या कमला कुछ उत्तर देते, डाक्टर ने अप्रसन्नता से कहा, "अब अगर आप चुप रहें तो मैं शुरू करूँ।"

"अच्छा...अच्छा," शर्माजी ने बिना विचलित हुए अपना सिर

ऊपर-नीचे हिलाया।

इस चोंचवाजी पर लीपा-पोती करने की इच्छा से जानकीप्रसाद ने कहा, "...लेकिन डाक्टर, आप तो स्टेथस्कोप लेकर आये ही नहीं हैं।"

"हाँ...फिर भी देख लेते हैं," डाक्टर ने राकेश की नब्ज़ पकड़ते हुए कहा। लग रहा था कि वे किसी दूसरी दुनिया में चले गये हैं और भूल चुके हैं कि उनके आस-पास भी कोई है। राकेश की आँखें और गला देखकर डाक्टर राकेश की पीठ और छाती पर तर्जनी की हलकी-हलकी ठोकरें मारकर काफी देर तक आवाजें सुनते रहे। शर्माजी भौंहें उठाकर उत्सुकता से देखते रहे फिर जानकीप्रसाद की तरफ मुड़कर जैसे अपने-आप से ही वोले, "याने कि...क्या कहते हैं...स्टेथस्कोप होता तो अच्छी तरह जाँच हो जाती।"

राकेश की कमीज को नीचे खींचते हुए, डाक्टर ने अपनी खनखनाती आवाज में कहा, "आइ एम एच० सी० मेहता शर्माजी, माइ हैण्ड्स आर स्टेथस्कोप।"

"अच्छा...अच्छा..."

शर्माजी की ओर ध्यान दिये विना, डाक्टर ने कमला से कहा, "ये प्रिस्क्रिप्शन फाड़कर फेंक दो। ये एकदम मूर्ख डाक्टर है। इसको तो आनन्द टाकिज के सामने मूंगफली वेचना चाहिए। मैं दूसरा प्रिस्क्रिप्शन दे रहा हूँ।"

"डाक्टर साहव, मुझे भी कुछ वतला दीजिए," शर्माजी ने फिर अपना राग अलापा।

डाक्टर मुखातिव हुए, "क्या तकलीफ है आपको ?"

"पेट गड़वड़ रहता है।...वो हुआ ऐसा कि दसेक दिन पहले एक वारात में चला गया था। तभी से...हैं...हैं..."

डाक्टर कुछ क्षणों तक उनकी तरफ गौर से देखते रहे फिर चुप्पी तोड़कर उन्होंने पूछा, "कितनी उमर है आपकी ?"

"अड़सठ साल का हूँ," शर्माजी उम्र वतलाते हुए अकारण खुश

होकर मुस्कराने लगे।

"हूँ···बुरा तो लगेगा ग्रापको।" डाक्टर ने ग्रपना कीमती पेन खोलकर प्रिस्क्रिप्शन लिखते हुए पूछा, बारात मे जाना जरूरी है क्या इस उम्र मे?"

"क्या बताएँ साब, बड़ा करीबी रिश्ता था।"

"करीबी रिश्ता···करीबी रिश्ता", डाक्टर के स्वर में नाराजगी उभरी, "रिश्ता जीवन से बड़ा है क्या? ग्रपने स्वास्थ्य से भी गहरा रिश्ता ग्रौर किसी से हो सकता है? ग्राप कोई लौंडे-लपाड़े हैं कि बारात मे भागते चले गये।"

"जी···!" शर्माजी स्तब्ध रह गये थे। राकेश ग्रपनी हँसी दबाता हुग्रा दूसरे कमरे मे चला गया।

"जी हाँ, ये भाग-दौड़ बन्द कीजिए वरना ग्रभी ग्राप बारात मे जाएँ ग्रौर बारात राम नाम सत्य है कहती हुई लौटे। खैर, ये गोलियाँ लीजिए।" डाक्टर ने उनके हाथ मे कागज का पुर्जा थमाया ग्रौर उठते हुए जानकीप्रसाद से कहा, "मैं चलूं। ग्राज डाक्टरों की मीटिंग है।"

जानकीप्रसाद और कमला जब डाक्टर को कार तक पहुँचाकर लौटे तब भी शर्माजी कागज का पुर्जा थामे हुए स्तब्ध बैठे थे। शायद ग्रपने मरने की कल्पना के गहरे झटके से वे ग्रभी भी उबर नहीं पाये थे। थूक निगलकर उन्होंने कहा, "बड़े विचित्र हैं डाक्टर साहब।"

उनकी मुद्रा से जानकीप्रसाद को मजा ग्रा गया था। स्वर को भर-सक सहज बनाकर उन्होंने कहा, "हाँ शर्माजी, हमारे साढ़ू भाई जरा ज्यादा ही सत्यभाषी हैं।"

"हाँ वही तो। भला उन्हें ऐसा कहना चाहिए।"

"ग्ररे शर्माजी, ग्रापको तो उन्होंने कुछ नहीं कहा। जब उनके पास कोई सीरियस मरीज ग्राता है तो मालूम है, हमारे साढ़ू भाई क्या कहते हैं। कहते हैं···जब मरने को हो गये हो तब डाक्टर मेहता के पास चले ग्राये। ग्रब यदि मर जाग्रोगे तो लोग कहेंगे कि डाक्टर मेहता के इलाज

से मर गया।"

"बड़े भयानक आदमी हैं भाई। डाक्टर तो ऐसा होना चाहिए कि उनसे मिलकर आधी बीमारी दूर हो जाय।" शर्माजी ने उठते हुए कहा।

"मगर हमारे डाक्टर मेहता से मिलकर मरीज की आधी जान पहले चली जाती है।" जानकीप्रसाद ने मौज में आकर कहा, "पर हाँ, जब वे कोई केस अपने हाथ में ले लेते हैं तो···बस, समझ जाइए कि बीमारी को भागना ही पड़ता है। तब तो इतने नामी डाक्टर हैं।"

"हाँ भाई, नामी डाक्टर तो हैं···मगर उन्हें भला ऐसा कहना चाहिए था।" शर्माजी ने चलते हुए कहा। उनका आघात अभी भी कम नहीं हुआ था।

उनके जाने पर कमला ने कप-प्लेट उठाते हुए कहा, "सच में··· जीजाजी का मुँह बहुत बुरा है।"

"सो तो है, लेकिन ये चिपकू भी तो नम्बरी चोर हैं।"

संदीप और चारीन्‍ दोनों ही छुट्टी पर घर आये थे।

फरवरी के प्रथम सप्ताह में जबकि अधिकांश स्थान पर कड़ाके की ठण्ड पड़ती है, रायपुर से न केवल ठण्ड विदा होने लगती है बल्कि गर्मी का पूर्व संकेत भी मिलना प्रारम्भ हो जाता है। यह वह समय होता जब दिन में तीन-चार बार मौसम की असलियत हाथों से छूटकर अपरिचित मुद्रा धारण कर दूर खड़ी हो जाती है। अधिक देर तक छाया में खड़े होने पर लगता है कि ठण्ड है और धूप में आते ही अनुभव होता है कि गर्मी प्रारम्भ हो गई है। यह तय कर पाना कठिन होता है कि चाय पीने की इच्छा हो रही है या शर्बत पीने की। हाँ, शामों पर मौसम का कोई असर नहीं पड़ता। किसी भी मौसम और ऋतु में वे अपनी ही मालूम पड़ती हैं। वैसे भी शामों का सम्बन्ध मौसम से उतना नहीं होता जितना कि आत्मीय वातावरण से होता है। रायपुर की शामों

में न तो बम्बई जीवन का वह उद्देश्यहीन भटकाव है जो मनुष्य को सिमटते हुए लँगड़े कुत्ते-सा बेमानी बना देता है और न ही महानगरीय जीवन का वह अजनबीपन है जो आदमी को निहायत बेचारा और भटका हुआ बना देता है। वस्तुतः रामपुर जैसे मँझोले शहर की शान हर स्वभाव और उम्र के आदमी को रास आ जाती है। चाहे मॉल-रोड-सी मालवीय सड़क पर कोई घूमे या अंबेसडर [illegible], उसे उस अपनेपन का बोध होता रहता है जो आदमी को शहर से जोड़ता है। यहाँ गाम को भी महसूस किया जा सकता है और शहर को भी। हर जगह कुछ परिचित और अपरिचित चेहरे न केवल मुस्कराते रहते हैं बल्कि आदमी के अस्तित्व को भी स्वीकार करते हैं।

संदीप जब सूट-टाई से सजकर बाहर आया तब बरामदे की कुर्सियों पर आलोक और दारोग पहले से ही बैठे थे। आलोक ने मुस्कराकर, दारोग को आँखों से इशारा किया। यह इशारा इतना स्पष्ट किया गया था कि संदीप भी उसे देख सके। संदीप ने देखा भी। आखिर चिढ़ के उसने पूछा, "क्या हुआ?"

"कुछ नहीं···ठण्ड बहुत है," आलोक ने पूरी गम्भीरता से कहा।

"हाँ, आखिर फरवरी का महीना है। मसूरी में तो अच्छी-खासी ठंड है आजकल। यहाँ तो कुछ भी नहीं है।" टाई पर हाथ फेरते हुए संदीप ने सूट पहनने की सफाई दी।

"हाँ भइया, रामपुर का मौसम भी तुम जब आए हो तभी कुछ बदले।" दारोग ने कहा।

"वैसे हमारे प्रोफेसर श्री बी० सी० श्रीवास्तव कहा करते थे कि रामपुर में केवल दो प्रकार का मौसम रहता है। लखनऊ के कुर्ते का और खादी के कुर्ते का।" आलोक ने टीप जोड़ी।

"तुम लोग तो बेवकूफ हो। सूट ठंड से बचने के लिए नहीं पहना जाता।"

"फिर?"

"सूट केवल सूट पहनने के लिए पहना जाता है।" संदीप ने अपनी व्याख्या प्रस्तुत की, "इतनी दूर से सूटकेस में भरकर लाया हूँ, आज चाहे पसीने से तर-बतर क्यों न हो जाऊँ पर सूट की कीमत वसूल करनी ही है!"

"वैसे यह तो तुम्हें मालूम है भइया कि रायपुर में टाई पहनने वाले को लोग इस तरह देखते हैं जैसे कोई मंगल ग्रह से आया हो।" आलोक ने कहा।

"कुछ भी कहो पर आज मैं सूट पहनकर ही घूमूंगा। तुम लोगों को चलना है मेरे साथ? सुनते हैं इस बीच यहाँ गिरनार नाम का अच्छा रेस्टोरेन्ट खुला है। क्यों वारीश।" संदीप ने कुर्सी पर बैठते हुए पूछा।

आलोक और वारीश फौरन उठ खड़े हुए। वारीश ने खुद ही कहा, "हाफ स्वेटर तो पहन ही ली जाय।" वह अन्दर की ओर मुड़ने को हुआ कि आलोक ने फिर से बात का सूत्र पकड़ा, "क्यों वारीश, वैसे भइया का ध्यान आजकल सजने-सँवरने में ज्यादा रहता है।"

"···क्या कहते हैं···वो रजनी पटेल···"

"क्या कहा?" वारीश की बात को काटकर संदीप झमककर खड़ा हो गया और उसने आंखों को आश्चर्य से फैलाकर पूछा, "क्या कहा?"

"वो···क्या कहते हैं···किसी रजनी पटेल का एक रजिस्ट्री पत्र आया था दोपहर में। तुम तो कहीं गए थे, मैंने रख लिया है।"

"हूँ···" संदीप ने निर्लिप्तता दर्शाने का प्रयास किया।

"हूँ···" आलोक ने भी वैसी ही मुद्रा बनाई और कुछ क्षणों तक चुप रहने के बाद वह बोला, "वैसे भइया, जब तुम पिछली बार छुट्टियाँ लेकर आए थे तब भी इनका एक रजिस्ट्री पत्र आया था तुम्हारे पास।"

संदीप अपने को घिरा हुआ अनुभव कर रहा था और वह समझ नहीं पा रहा था कि उसे क्या कहना चाहिए।

"वैसे अब तुम्हें सब कुछ बतला देना चाहिए," वारीश ने आलोक की ओर देखा, "क्यों ना?"

"ऐसा···!" संदीप ने सोचने का नाटक किया, "अच्छा, आज रात को माँ को बतला देंगे।"

···रात भोजन के समय के पूर्व ही डाक्टर घर लौट आए थे। यह नियम के विपरीत था और ऐसा होना अप्रत्याशित से कहीं अधिक अजीब लग रहा था। कमरे में बैठकर पत्रिका के पन्ने पलटते हुए आराम की मुद्रा में बैठे हुए डाक्टर से सावित्री ने पूछा, "आपकी थाली यहीं कमरे में ला दूं···या आप सबके साथ खाएंगे?"

डाक्टर ने आँखें उठाकर यूं देखा जैसे दुविधा में हों फिर छोटा-सा उत्तर दिया, "वहीं खाएँगे।"

सावित्री कुछ क्षणों तक भावशून्य खड़ी रही फिर यह जानकर उसे अटपटा लगा कि पति के इस प्रस्ताव से उसे कोई प्रसन्नता नहीं हुई है! जीवन की इतनी सहज और स्वाभाविक क्रिया उसके पारिवारिक जीवन में किसी उपद्रवी घुसपैठिए की तरह नितान्त अपरिचित लग रही थी!! आगामी क्षणों की अनिश्चितता के विषय में सोचते हुए जब उसे अनुभव हुआ कि उसकी हतप्रभ मुद्रा को डाक्टर कुछ परेशानी से देख रहे हैं तो अपने को सहज बनाने का प्रयास करती हुई वह जल्दी-जल्दी वापस लौट गई।

खाने की मेज पर बैठकर डाक्टर ने अनुभव किया कि एक लम्बे अर्से के बाद वे अपने परिवार के सदस्यों के साथ इस तरह बैठकर भोजन कर रहे थे। इतने लम्बे अन्तराल की बात सोचकर, वे अचकचाकर लड़कों की ओर देखने लगे।···तो उनके लड़के इतने बड़े हो चुके थे। मानो इसी अनुपात में वे स्वयं बुढ़ापे की ओर बढ़ चुके हैं। टेबल पर बस नलिनी सबके साथ नहीं थी। वैसे उन्हें पहले ही अनुमान लगा लेना चाहिए था कि नलिनी सबके साथ बैठकर शायद ही भोजन करेगी। उनकी इच्छा हुई कि नलिनी के विषय में पूछें। पर क्या पूछा जा सकता है? अधिक से अधिक स्वास्थ्य के सम्बन्ध में!

डाक्टर ने जैसे ही दृष्टि उठाई, वारीश ने अनुभव किया कि उसकी तरह ही, उसके भाइयों ने भी सब्जी या दाल लेने के बहाने अपने को व्यस्त बना लिया था। हर कोई अपने आपको सहज प्रदर्शित करने के प्रयास में कुछ हास्यास्पद बन गया था। व बेवजह खाँस या खुजला रहे थे और खाने में आवश्यकता से अधिक आवाज पैदा कर रहे थे। इस प्रयास में आलोक ने दाल छलका दी थी और स्वयं वारीश ने चम्मच गिरा दी थी। सभी जैसे एक साथ कोई अपराध करते हुए रंगे हाथों पकड़े जाकर एक-दूसरे से शरमाते हुए निगाहें चुरा रहे थे। वारीश ने सोचा कि आखिर ऐसा क्यों होता है हमारे घर ? उसे अपने कुछ मित्रों के घरों की याद आई जहाँ सारे परिवार का भोजन पर एकत्रित होने का अर्थ था एक हरारत से भरा वातावरण। उस वातावरण में भोजन एक स्थूल आवश्यक कर्म न होकर एक-दूसरे से जुड़ने का सूत्र बन जाया करता है। जबकि यहाँ, तनहा कैद के सजायाफ्ता कैदी की तरह जैसे सभी अन्धी कोठरी में बैठकर मात्र खाने के लिए ही खा रहे थे। क्या संदीप भइया अपने रहस्य को उजागर कर पाएँगे ? सचमुच कितना कठिन होता है अपने अन्तर्मन के रहस्योद्घाटन के अनुरूप परिस्थितियों को पाना।

घिरती हुई चुप्पी में, खाने की मेज पर उभरने वाली छोटी-मोटी आवाजें सावित्री के मस्तिष्क में कीलों की तरह घुस जाती हैं। चोर निगाहों से उसने सभी को देखा। एक नकली व्यस्तता ने सभी के चेहरे की स्वाभाविक मुद्रा को जकड़ लिया था। उसे लगा कि रिश्तों के अपने-अपने पुलों के माध्यम से वे सभी एक-दूसरे की तरह बढ़ने का प्रयास जरूर करते थे लेकिन बीच में पहुँचते-पहुँचते ठिठककर खड़े हो जाते थे क्योंकि ये पुल टूटे हुए थे। उनमें बन चुकी गहरी दरारों को असहाय दृष्टि से देखने के अतिरिक्त उनके पास कोई उपाय नहीं था।

तभी डाक्टर की आवाज चुप्पी को तोड़कर गूंजी, "तो···अब तक कुछ आपरेशन तो तुमने कर लिए होंगे ?"

प्रश्न संदीप से पूछा गया था पर सभी चौंक गए थे। खामोशी अचानक यूं टूट जाएगी यह आशा किसी को भी नहीं थी। संदीप तो बिलकुल ही हड़बड़ा गया था। कौर चबाते हुए अजीब से स्वर में उसने कहा, "जी हां···यानी कि···दो-तीन केस किए हैं।"

एक प्रश्न और एक उत्तर के बाद फिर चुप्पी छा गई जिसके बीच छोटी-छोटी निरर्थक आवाजें अब और बड़ी होकर उछलने-कूदने लगीं। बिना किसी भूमिका के डाक्टर ने फिर कहा, "वहां के मिशन अस्पताल के डाक्टर वाल्टर से मिल लेना। नामी डाक्टर हैं और मेरे परिचित हैं। कभी चाहो तो कन्सल्ट भी कर सकते हो।"

"जी, अब जाते ही मिलूंगा," संदीप ने मुस्कराने का प्रयास किया किन्तु डाक्टर के सपाट चेहरे को देखकर वह मुस्करा नहीं पाया।

"इधर तुमने रिसेन्ट एडवांसेस आफ सर्जरी में डाक्टर कुर्त का लेख पढ़ा या नहीं ?" डाक्टर के स्वर में अध्ययनशील शोधार्थी की जिज्ञासा झलकने लगी थी।

"जी···किस अंक में ?"

"मतलब कि नहीं पढ़ा है।" डाक्टर के स्वर से समझ नहीं आ रहा था कि वे व्यंग्य से बोल रहे थे या विरक्ति से, "नये अनुसंधानों से यदि परिचित नहीं रहोगे तो डाक्टरी करने का कोई मतलब नहीं है। सर्दी-जुकाम और बुखार का इलाज तो नानियां-दादियां और आदिवासी ओझे भी कर लेते हैं।"

"मैं जरूर पढ़ूंगा···हो सका तो कल ही," संदीप ने जल्दी से कहा। संदीप अपने पिता से इस तरह की बातें तब से सुनता आया था, जब से उसने मेडिकल कालेज में दाखिला लिया था। इन बातों में तथ्य और वजन है इसे भी वह मन में स्वीकार करता था।

"देखो डाक्टर संदीप मेहता, सारी दुनिया में मनुष्य अपने-अपने तरीके से मृत्यु और बीमारी से लड़ रहा है। दुनिया के एक कोने में जो अनुसंधान हुआ है, उसका लाभ यदि दूसरे कोने को भी नहीं मिल सका

तो मनुष्य के परिश्रम का कोई अर्थ नहीं है। और इसे एक कोने से दूसरे कोने तक कौन ले जाएगा ? डाक्टर ही ना···डोन्ट यू फील ?" डाक्टर की तीक्ष्ण दृष्टि में आत्मलीनता थी जैसे वे अपने आपसे ही कह रहे हों।

"सर्टेनली···सर्टेनली" संदीप ने संजीदगी से कहा। डाक्टर चुप हो गए और फिर सन्नाटा छा गया।

इस वार की नीरवता आलोक को अखरी। उसे लगा कि वातचीत को और लम्बा खिचना चाहिए था। पिता से आन्तरिक दूरी अनुभव करने के उपरान्त भी उन्हें इस तरह वोलते हुए उसने जब भी सुना है, उसे अच्छा लगा है। पर यही तो परेशानी थी कि हमेशा ही किसी प्रकार के आत्मीय वातावरण वनने के पहले ही वात समाप्त हो जाती थी। आज भी यही हुआ था। क्यों होता है ऐसा कि किसी वार्तालाप में सभी कोई सहभागी नहीं बन पाते ? कि मौन के पत्थर के नीचे सब कुछ दब जाता है ?

भोजन के बाद डाक्टर अपने कमरे में चले गए। अपनी आरामकुर्सी पर बैठकर उन्होंने सिगरेट सुलगाई और बगल की छोटी 'टेविल पर से पुस्तक उठा ली। पुस्तक को खोलते समय उन्होंने देखा कि यह तो यशपाल का उपन्यास 'मनुष्य के रूप' है। सम्भवतः दोपहर को इसी कुर्सी पर बैठकर सावित्री पढ़ती रही थी और उसकी पुस्तक यहीं रह गई थी। दो क्षणों तक वे पुस्तक को देखते रहे। मन ही मन स्थिति का मजा लेकर फिर कन्धों को उचकाकर उन्होंने पुस्तक रख दी और अपना जरनल खोजने लगे। ब्लड कैंसर पर आयुर्वेद के कुछ डाक्टरों ने काम किया है। उस पर एक विस्तृत लेख को पढ़ वे चकित थे। सरकार इस पद्धति को उठाती क्यों नहीं !···चिकित्सा तो चिकित्सा है।···पूर्वी और पश्चिमी पद्धतियाँ तो ऊपरी बातें हैं। आखिर चीनी पद्धति का एक्यू पंक्चर आज दुनिया के अधिकांश देशों में जा पहुँचा।···मगर अपनी सरकार। उँह···दिस राटन गवर्नमेन्ट···इट्स एन असेम्वलिंग आफ द पंक्स।···वेवकूफ

"बात सब ठीक ही है।...लड़की देखने में कैसी है? फोटो तो होगी तुम्हारे पास। दिखला दो...।" सावित्री ने मुस्कराकर कहा।

"ओह माँ...तुम सचमुच ग्रेट हो" संदीप ने मक्खन थोपा।

"ग्रेट मैं नहीं, ग्रेट तो वारीश है जिसने मुझे पहले ही बतला दिया था।"

फोटो देखकर सभी ने अनुभव किया कि संदीप का चुनाव अच्छा है। अचानक आलोक ने पूरी गम्भीरता से पूछा, "तुम क्या सोचते हो, हिज़ हाइनेस किस तरह रिएक्ट करेंगे?"

यही वह सीमारेखा थी जिसके बाद एक अपरिचित प्रदेश की शुरूआत होती थी। इस प्रश्न का उत्तर किसी के पास नहीं था। उन्हें लगा कि वे सब एक पिरामिड के चारों तरफ चक्कर काट रहे हैं किन्तु उसके अन्दर के रहस्य को जानने के लिए उन्हें किसी दरवाजे, झरोखे या दरार का ज्ञान नहीं है। कुछ देर तक मौन रहकर संदीप ने गम्भीरता से पूछा, "तुम क्या सोचती हो माँ?"

"मैं भला क्या बतलाऊँ।" सावित्री ने धीरे से कहा। सावित्री के सीधे सरल छोटे से उत्तर के पीछे छिपी हुई पीड़ा ने संदीप को छुआ। उसे लगा कि यह प्रश्न उसे नहीं पूछना चाहिए था। माँ और पिता का जीवन एक कमरे में व्यतीत होकर भी कोसों की दूरी पर स्थित रहा। संदीप ही नहीं आलोक और वारीश भी सोच रहे थे कि प्रश्न की धार ने माँ के एकाकी मन की कटुता और पीड़ा पर चढ़ने वाली समय की परत को छील दिया होगा।

निस्सन्देह सावित्री के मन में कटुता और पीड़ा थी। पहले तो छिली हुई खाल वाले अंग की तरह मन लौंकने लगा था किन्तु तुरन्त उसे लगा था जैसे ठंडे जल की फुहार धीरे-धीरे पड़ रही है! उसे लगा कि हृदय के किसी कोने से तृप्ति का कोई स्रोत फूट निकला है! उसके लड़कों ने उसे विश्वास के घेरे में ले लिया था। अँधेरे से भरे अपरिचित बीहड़ जंगल में किसी विश्वस्त साथी के बगल में चलने से सुरक्षा का

जैसा बोध होता है, वैसा ही सावित्री को हो रहा था। बच्चों के पैदा होने के बाद से वह निरन्तर सोचती रही थी कि बच्चे न जाने किसके दायरे में आयेंगे। वर्षों तक वह निरन्तर प्रतीक्षा करती रही थी कि बच्चे वयस्क होकर अपना अपनत्व-भरा विश्वास उसे दे देंगे। आज सचमुच उन्होंने अपना विश्वास उसे सौंप दिया था। एक प्रगाढ़ मैत्री भाव से वह अभिभूत हो रही थी। अब वह असहाय, सम्बलहीन नहीं थी और ना ही व्यक्तित्वहीन। अब उसे किसी भरमाने वाले आसरे की आवश्यकता भी नहीं थी।

कमरे में छा गई चुप्पी को अन्त में सावित्री ने ही तोड़ा, "तुम्हारे पिताजी के विषय में तो कुछ कहना कठिन है। उनसे कुछ कहने की जरूरत भी क्या है।"

"कहना तो पड़ेगा ही माँ," आलोक ने कहा, "आजकल रजिस्ट्री में काफी पैसे लगते हैं। ऐसी स्थिति तो बनानी ही पड़ेगी कि भइया का खर्च बच जाय।"

"हाँ कुछ तो सोचना ही पड़ेगा।" सावित्री ने पूरी गम्भीरता से कहा।

"मैं एक सलाह दूँ?" नलिनी ने झिझकते हुए कहा। तीनों भाइयों ने एक साथ उत्साह दिखलाया, "हाँ...हाँ...जरूर दो।"

नलिनी के भाई निरन्तर अनुभव करते रहे कि नलिनी का जीवन एक विचित्र विडंबना में फँस गया है। वह अब ना तो किनारों की थी और ना ही मँझधार की! जिस स्थायी अपराध बोध ने नलिनी को दीन-हीन और आत्मकुण्ठित बना दिया था, उसे उसके जीवन से पोंछ देने के हरसम्भव प्रयास के बाद भी नलिनी घर में मेहमान की तरह ही उपस्थित रहती थी। एक लम्बे अन्तराल के बाद नलिनी ने आज किसी घरेलू बातचीत में हिस्सा लिया था। भाइयों के अतिरिक्त उत्साह प्रदर्शन से नलिनी कुछ सकुचा गयी थी। वह स्वयं जानती थी कि इसके पीछे अन्ततः दया का भाव ही था। वह समझ नहीं पाई कि अपनी बात को

वह किस तरह सामने रखे ।

"कहो न, इसमें संकोच की क्या बात है ?" सावित्री ने उसकी ओर उत्सुकता से देखते हुए कहा ।

"भइया की आगरा में ही कोर्ट मैरेज करवा दी जाय ।" नलिनी ने संशय-भरी दृष्टि से सभी को देखा कि उसकी बात का क्या असर हुआ ।

"हाँ···वैसे इसका एक लाभ और भी है ।" वारीश ने नलिनी का समर्थन जैसा करते हुए कहा, "इन्टरकास्ट मैरेज होने के कारण बिरादरी वालों की चिकचिक और फालतू बातों से छुटकारा मिल सकता है ।"

"बिरादरी की चिन्ता की वैसी बात नहीं है । आजकल किसी को किसी की आलोचना की फुरसत नहीं है और फिर अपनी बिरादरी तो काफी एडवांस्ड है । असली समस्या तो है···अपने हिज़ हाइनेस की ।" आलोक ने अपना विश्लेषण प्रस्तुत किया ।

"हो सकता है कि पापा उस तरह रिएक्ट न करें जिस तरह तुम लोग सोच रहे हो ।" वारीश ने कहा ।

"वट यू कान्ट से एनी थिंग वारीश, ही इज़ द मोस्ट अनप्रेडिक्टेबल कैरेक्टर ।" संदीप की इस बात पर फिर चुप्पी छा गई ।

सावित्री फिर अपने में डूब गई थी ।···इतने वर्षों तक एक साथ हकर भी वह डाक्टर को क्या उस रूप में जान सकती थी जिसे वस्तुतः ानना कहते हैं ? मित्रों की एक दृष्टि से और चेहरे की छोटी-सी-छोटी व-भंगिमा से एक-दूसरे की आन्तरिक स्थिति को पहचानने का दावा गृहस्थ जीवन का न केवल इनाम है बल्कि उपलब्धि भी । सचमुच वह डाक्टर को कितना जानती थी ? उनके साथ तो उनका जीवन के डिब्बे में बैठे दो अजनबी यात्रियों की तरह कटा था जो भावहीन ों में पीछे डूबते हुए दृश्यों को देखते रहते हैं किन्तु जिनकी आँखों न्तरिक जुड़ाव ही कोई परछाई नहीं होती । जो मीलों तक एकसाथ भले ही करते हैं किन्तु किसी समान अनुभव के अन्तरंग साक्षी वे

नही होते । जो कुछ उसे जीवन मे नहीं मिला । दुर्भाग्य से उसकी लड़की को भी नही मिला वह उसके लड़के को अवश्य मिलना चाहिए और जल्दी से जल्दी मिलना चाहिए । अचानक उसे लगा कि वह बहू को देखने के लिए अत्यन्त व्याकुल है । शायद पहले भी रही हो । प्यास का सबसे तीखा अहसास पानी की प्राप्ति की सम्भावना पर ही तो होता है ।

"नलिनी शायद ठीक कह रही है । आगरा चलकर कोई मैरेज कर दी जाय । अपने पापा की चिन्ता फिलहाल छोड़ो । बाद में बतलाते रहेंगे ।"

"पापा को···" संदीप ने कुछ कहना चाहा ।

"अभी नही बतलाएँगे", सावित्री ने निर्णायक स्वर में कहा, "आखिर उन्हे बतलाने से समस्या सुलझेगी तो नहीं, उलझ भले ही जाय ।"

१ जनवरी

नया साल का पहला दिन आ गया है जो कतई गैर मामूली नहीं है । आगरा आए आठ महीने हो गए हैं । आठ महीनों में आज तीसरी बार ताज देखा । आज मैं और रजनी काफी ताज के सामने लान पर देर तक बैठे हुए मूंगफली खाते रहे । आगरा रायपुर से बेहतर शहर नही है । ताज और किला ही तो हैं यहां किन्तु फिर भी आगरा मेरे लिए सुरक्षित शरण्य स्थल है । रायपुर में तो लगने लगा था जैसे व्यक्तित्व के चारो तरफ रस्सियां जकड़ी हुई हैं । यहां ना तो वे चुभती हुई नजरें हैं और न हिकारत-भरी कुटिल मुस्कानें । उन नजरों और मुस्कानों के बीच रहना चलते हुए भालों के बीच अपने-आपको सुरक्षित रखने का श्रमद प्रयास था । अपने विषय में दूसरों के द्वारा लगातार सोचे जाने की क्रिया कितनी फूहड़ और क्षोभ दिलाने वाली होती है ! कहीं भी निकलने पर लोग इस तरह घूरकर देखते थे जैसे प्रेम किसी और ने किया ही ना हो ।

आगरा में मैं वही हूँ जो दिखलायी देती हूँ···यानी एक कुमारी

लड़की जो विवाह नहीं करना चाहती। यहाँ इतने दिनों तक सहज जीवन बिताकर लगा है जैसे आस-पास सचमुच कोई ठोस दुनिया है। अन्तर्मुख होकर नितान्त अपने ही संसार में जीना कितना कठिन है। किन्तु इस बाह्य सुविधा के समानान्तर निरन्तर पलता हुआ एक अभाव है। विनोद से दूरी। पता नहीं विनोद कैसे सहन कर रहा होगा? मेरे आस-पास तो फिर भी लोग हैं—माँ, भाई-भाभी। लेकिन वह तो नितान्त अकेला है। अपने मन को समझाने के लिए वह हमारे घर को अपना घर समझ सकता था पर अब वह भी नहीं हो सकता। कभी-कभी सोचती हूँ कि क्या माँ भी मेरी मनःस्थिति को नहीं समझ पाती होगी? प्रेम की प्यास औरत के जीवन में क्या महत्त्व रखती है इसे तो माँ जानती है। दाम्पत्य के नाम पर माँ ने छलावा ही तो जिया है। फिर भी सब लोग क्यों चाहते हैं कि मेरा जीवन भी नौटंकी का मंच हो जाय जहाँ अपने चेहरे को छिपाकर कोई नकली चेहरा ओढ़कर दूसरे के इशारे पर···अनिवार्य विवशता से आदमी भोंडी हरकतें करता है।

७ जनवरी

अब हर दिन डायरी लिखने की आदत छूट गई है। शायद इसकी आवश्यकता भी नहीं रह गई है। जब मन के खौलते जज्बातों को बाहर निकालने का कोई रास्ता नहीं था तब डायरी लिखना पलायन भी था और सेफ्टी वाल्व भी। अब तो बहुत-सी बातें रजनी भाभी से कर लेती हूँ इसलिए आजकल मन कुछ हलका हो गया है। आज कपूर परिवार आया था और हम लोग देर तक गप्पबाजी करते रहे। कई दिनों के बाद किसी अतिथि परिवार के साथ बैठकर मैंने बातों में हिस्सा लिया।

रायपुर की यादें तो सचमुच दुःस्वप्न की तरह हैं। लोगों के घर आने का अर्थ होता था मेरे लिए परेशानी और घर वालों के लिए शर्म। लोग आते थे तो मैं भीतर के कमरों में छिप जाया करती थी पर लोग थे कि ज़रूर पूछते थे, "नलिनी कहाँ है?"···बदतमीज लोग!

इन्हें दूसरों के जलते घरों में हाथ सेंकना अच्छा लगता है। किसी रिश्ते-दार के आने पर तो और भी मुश्किल होती है। उनके साथ आने वाले बच्चे मुझे घेरकर बैठ जाते थे और माँ देखते थे जैसे चिड़ियाघर के कटघरे में भालू को देखते हैं। विनोद और पापा ने केस लड़कर सारी दुनिया में ढिंढोरा पीट ही दिया था। घर आने-जाने वाले बुजुर्गों की आँखों में व्यंग्य और उपेक्षा का भाव साफ दिखलाई पड़ता था। मुझे लगता था कि उनकी आँखों में उँगलियाँ घुमेड़ दूँ। घर में रहना सड़ते हुए पानी वाले तालाब में रहने की तरह था, इसलिए मैं घर में किसी के आने पर एक औपचारिक भेंट के बाद पास रहने वाली अपनी सहेली ज्योति के यहाँ चली जाती थी। बाद में तो वहाँ जाना भी छोड़ना पड़ा। मुझे लगा कि घर के लोग शायद शक करते हैं कि मैं कहीं चुपके से फिर न भाग जाऊँ और ज्योति के घर वालों को लगता था कि मेरी कलंक कथा से ज्योति की भी बदनामी होगी। आखिर यह है तो भारतीय समाज। स्त्रियों और उनकी त्रुटियों के प्रति घोर असहिष्णु।

१० जनवरी

आज माँ रायपुर से लौट आईं। पच्चीस दिन पहले ही रायपुर गई थीं। हम लोगों ने सोचा था कि कुछ दिनों तक माँ शायद वहीं रहेंगी क्योंकि भाभी के दिन चढ़े हैं और बच्चा होने के बाद तो माँ को साज-सम्हाल के लिए भविष्य में वहीं रहना पड़ेगा। माँ के लौटने का मतलब है कि अब वे रायपुर जल्दी नहीं जायेंगी। अब माँ और पापा का जीवन दो दिशाओं में बहने वाली धाराएँ हैं। घर में सभी की चर्चा होती है और कितने ही विषयों को लेकर बहस। बस, पापा की चर्चा कभी नहीं होती! शायद इसलिए कि कोई अपने आन्तरिक भाव को छिपाना चाहता है। इतने निकटतम सम्बन्ध को हमारी आत्मा नकार रही है यह सभी समझकर हम अपनी ही दृष्टि में गिरने लगते हैं।

मुझे अच्छी तरह याद है कि संदीप भइया की कोर्ट मैरेज आगरा

में हो यह सलाह मैंने ही दी थी। मेरे मन में एक हिंस्रभाव था कि जिस तरह पापा ने सारी दुनिया से काटकर मुझे अकेला कर दिया है उसी तरह मैं भी उन्हें नितान्त निःसंग बना दूं। उस बीहड़ एकाकीपन का अनुभव उन्हें भी हो जैसा मुझे हुआ था। जब माँ ने मेरी बात का समर्थन किया था तब मुझे लगा था···क्षण-भर को, बल्कि क्षण-भर से भी छोटी समय की किसी इकाई-भर के लिए कि माँ की आँखों में वह ठंडी निर्ममता उग आई थी जैसी शिकार पर झपटते समय अपनी बिल्ली पूसी की आँखों में मैंने देखी है।

आज माँ ने इतनी बातें कीं पर यह चर्चा नहीं की कि पापा घर में अकेले किस तरह रहते हैं। वारीश भी तो अब एच० एम० टी० में ट्रेनिंग के लिए चला गया है। इस सम्बन्ध में स्वयं पापा ने भी कभी कुछ नहीं कहा। जब पहली बार माँ ने यह निर्णय पापा को बतलाया था कि संदीप भइया के पास आगरा जा रहे हैं तो क्षण-भर को लगा था कि पापा मना कर देंगे। माँ के यह बतलाने पर उन्होंने आँखों में कुछ आश्चर्य भरकर देखा था और फिर सिगरेट को ऐशट्रे में रगड़कर बुझा दिया था। पापा के मौन से माँ विचलित नहीं हुई थी। पता नहीं, राजनैतिक पार्टी में सम्मिलित होने से उनमें यह क्षमता आई थी या सब्र का पैमाना छलकने से। माँ ने हलके से व्यंग्य में कहा था, "रामवरन तो खाना बना ही देता है। हमारे घर में न रहने से अन्तर भी क्या पड़ेगा। आप घर में रहते ही कितना हैं।"

पापा ने आँखें थोड़ी सिकोड़ी थीं। क्षण-भर को उनमें कुछ सुगबुगाया था फिर हमेशा की तरह भावहीन आँखों को घुमाकर उन्होंने केवल इतना-भर कहा था, "जैसी इच्छा हो, करो।"

यह माँ की हार थी। मुझे लगा था उनके मन में बहुत कुछ कहने को था जो तभी कहा जा सकता था जब पापा की ओर से कोई प्रतिरोध होता। निर्लिप्त उपेक्षा ने मन को गहराई तक कुरेद दिया होगा। मालूम नहीं इस बार माँ के आते समय क्या हुआ। हम लोगों ने पूछा नहीं, माँ

ने कहा नही ।

१५ जनवरी

आज फिर रजनी भाभी ने पूछा कि आखिर पापा से ये घरेलू रिश्ते कब तक छिपाकर रखे जायेंगे। उन्हें सब कुछ बहुत अजीब-सा लग रहा है और शायद अपमानजनक भी। "चाहे पापा नाराज हो लें और उसके बाद जीवन-भर मुँह न देखें यह बेहतर है," उन्होने कहा, "लेकिन ये लुकाछिपी का खेल और रिश्ते को नाजायज सम्बन्ध की तरह छिपाना गलत है।"

रजनी भाभी की बात मे सार है लेकिन इसके दूसरे पहलू पर भाभी ने ध्यान नही दिया। उनका ध्यान जा भी नहीं सकता क्योंकि उन्होने रिश्तों की विडम्बना को उस स्तर पर नही भोगा है जैसा मैंने और मेरी तरह ना जाने कितने ही लोगों ने भोगा होगा। मैंने और विनोद ने अपने सम्बन्ध को नाजायज नही माना था, इसलिए उसे छिपाया भी नही था। भाभी और भइया का सम्बन्ध जायज है लेकिन छिपाया जा रहा है। और माँ और पापा का सम्बन्ध ? वैधानिक दृष्टि से जायज और तमाम परम्पराओं से शोषित होकर पवित्रता का ठप्पा लगने के उपरान्त भी ना तो छिपाने योग्य और ना ही गर्व करने योग्य। कितनी अजीब बात है। कभी-कभी जायज सम्बन्ध नाजायज हो जाता है और नाजायज हो जायज।

छः महीने पहले तो भाभी को लेकर हम सभी रायपुर भी हो आए। माँ कितना कितना सोचकर गई थी कि मौका देखकर पापा को सब कुछ बतला दिया जायगा। बतलाने का मतलब था केवल सूचना देना। एक नये हंगामे की सम्भावना पर हम सब भयभीत नहीं थे बल्कि उत्सुक थे। ऊपर से शान्त बने रहने की कोशिश करते हुए भी हम अन्दर-अन्दर उत्तेजित थे और किसी हद तक अपने सामूहिक विजय पर सन्तुष्ट। कमला मौसी को पहले ही सूचना दे दी गई थी कि रजनी भाभी उन्हीं

के यहाँ ठहरेंगी और हम सब घर में। भाभी बड़े बेमन से इस बात के लिए तैयार हुई थीं। पहली बार ससुराल जाना और वह भी छिपकर।

कमला मौसी ने दिल खोलकर स्वागत किया था मगर यह कहना नहीं चूकी थी, "जिज्जी, ये नाटक कब तक रचाओगी ?"

भाभी बहुत अनइजी अनुभव कर रही थीं और भइया जरूरत से ज्यादा हँसकर, समझाकर उन्हें आश्वस्त करने का प्रयास कर रहे थे। दरअसल ऐसा करके वे स्वयं को आश्वस्त कर रहे थे। उनका चेहरा चुगली खा रहा था।

हमारे घर लौटने को पापा ने सामान्य तौर पर लिया था। भोजन करते समय वे भइया से ब्लड कैंसर और हृदय रोग की बातें करते थे और फिर अपने वर्षों के नियमित कार्यक्रम में व्यस्त हो जाते थे। पंजे दबाकर सधी चाल से आते-जाते और नपे-तुले शब्दों में बोलते हुए पापा अपने आपमें पूर्ण लग रहे थे, किसी के मोहताज नहीं। माँ कुछ कह नहीं सकी थीं ! वे दूसरी बार हार गई थीं। कभी-कभी तीव्र इच्छा हो जाती थी कि जाकर सीधे कहूँ···पापा क्या आप सोचते हैं कि हम भी अपने में सम्पूर्ण कोई ऐसा संसार नहीं रच सकते जहाँ हमें आपकी चिन्ता नहीं होगी ?

हम दोपहर को भाभी के पास चले जाते थे या उन्हें घर बुलवा लेते थे। शाम को भी हम उन्हें देर तक घुमाते रहते थे। हमारा बहुत-सा समय कमला मौसी के यहाँ बीतता था। हमारे क्रियाकलाप का असर मौसी के घर के वातावरण पर भी पड़ा था। मौसा-मौसी हर दिन हमारी ओर आशाभरी दृष्टि से देखते थे कि हम कुछ समाचार देंगे। हम हर दिन जाकर अकारण मुस्कुराते थे तो भाभी खीजी हुई दिखलाई देतीं फिर किसी तरह अपने-आपको सम्हाल लेतीं। एक दिन तो माँ ने तय ही कर लिया था कि वे पापा को सब कुछ बतला देंगी पर बात की भूमिका भी नहीं बँधी थी कि पापा बाहर जाने के लिए तैयार होने लगे। उस दिन मेडिकल कालेज में केलिफोर्निया के किसी डाक्टर का भाषण

था। पापा ने जाते-जाते जो भी कहा था उसका मतलब था कि फालतू बातों के लिए उनके पास समय नहीं है। माँ आहत हुई थीं या अपमानित यह तो समझ नहीं पाया था लेकिन उन्होंने तुरन्त निर्णय ले लिया था कि हम लोग दो दिनों के बाद ही आगरा लौट जायेंगे।

"...आज भाभी ने भइया से कहा, "मेरे घर वाले मुझसे पूछते हैं कि तुम्हारी शादी की खबर तुम्हारे ससुर को अभी तक क्यों नहीं दी गई। मुझे तो बड़ी शर्म आती है।'

'भइया ने रुककर कहा था, "उन्हें क्या चिन्ता है ?"

भाभी आज पहली बार रूठी हैं।

२३ अप्रैल

कितने दिनों से कुछ भी नहीं लिखा ! जब इतने दिनों का व्यवधान पड़े तो अर्थ यही है कि डायरी लिखने की इच्छा ही चुक गई है। फिर आज क्यों लिख रही हूँ ? शायद गुलमोहर के ढेर-ढेर फूलों को खिला देखकर। इस क्वार्टर के सामने वाली सड़क पर गुलमोहर ही लगे हैं। एक बार विनोद ने एक कविता लिखकर दी थी—

तुमको फिर याद किया, देखकर
गुलमोहर के लाल लाल फूल।

ओह, कितने दिन हो गए विनोद को देखे हुए ! पता नहीं जीवन भविष्य में कौन-सा आकार ग्रहण करेगा।

हममें से हर किसी का जीवन तो अलगाव और अकेला होता जा रहा है। लगता है कि अन्दर ही अन्दर हम सभी एक-दूसरे के मोहताज हैं। अन्दर से कहीं इस बात के आकांक्षी कि हमारे अस्तित्व और महत्त्व को दूसरे लोग स्वीकार करें लेकिन चेहरे पर ऊपरी निर्लिप्तता का मुखौटा लगाए हुए एक-दूसरे को हम न केवल धोखे में रखते हैं बल्कि अपने आपको बहलाए रहते हैं। भइया का अड़ा हुआ-सा मेरी उपस्थिति के पीछे यह अनुभूति थी कि अन्त में पापा को हमने अपने

घेरे से बाहर फेंक दिया। माँ की तुष्टि का भी यही कारण रहा होगा। माँ स्वीकार नहीं करेगी लेकिन औरत को पहचानने में अक्सर ही औरत भूल नहीं करती। पापा के रिश्ते के सूत्र को निर्जीव बनाकर माँ ने उनसे जीवन-भर का बदला ले लिया है। औरत सब कुछ सह सकती है पर अपने को केवल मतलब निकालने के लिए चीज समझा जाना वह सहन नहीं कर सकती।

किन्तु अब मुझे यह सब बेमानी लग रहा है। आखिर इतने दिनों के इस शीतयुद्ध की उपलब्धि क्या है? जब तक विपक्षी अपमान के दंश से तिलमिला न उठे तब तक उपेक्षा क्योंकर सार्थक हो सकती है? पर यहाँ तो स्थिति विपरीत है। व्यर्थ ही इधर-उधर खूब दौड़-धूप करके जीभ निकालकर हाँफने वाले कुत्ते की तरह हम सभी बेदम हो रहे हैं। रजनी भाभी तो कभी-कभी फूटने की स्थिति में पहुँच जाती हैं। माँ को तो अपने आन्तरिक भावों को छिपा सकने का अच्छा अभ्यास हो गया है। कभी लगता है कि वे अपने को विजयी समझती हैं और कभी लगता है कि पराजित!

अभी साढ़े तीन ही बजे थे।

महिला समिति की बैठक से लौटकर सावित्री बिना कपड़े बदले हुए पलंग पर तकिए का सहारा लिये हुए अधलेटी हो गई थी। रायपुर में महिला कांग्रेस की गतिविधियों में वह सक्रिय हिस्सा लेने लगी थी। समय काटने के लिए जो काम उसने प्रारम्भ किया था उसमें वह उलझती गई थी। व्यर्थ की व्यस्तता की उसको शिकायत पता नहीं कब मन से निकल गई थी और जो काम पहले उसे तथ्यहीन लगते थे, बाद में वे ही नशे की आदत की तरह आवश्यक लगने लगे थे। जब वह उपाध्यक्षा बन गई थी तब वह अनुभव करती थी कि उसका अस्तित्व भी कहीं किसी के लिए आवश्यक है। आगरा आकर उसे लगा कि घर से बाहर की दुनिया से जुड़ना अब उसके स्वभाव की अनिवार्यता बन चुकी है। पर यहाँ

उसने अपने-आपको महिला समिति तक ही सीमित रखा था।

अपनी थकावट का कोई कारण वह नही ढूंढ पाई क्योंकि दो बजे ही तो वह बैठक के लिए गई थी पर बैठक ना होने के कारण वह लौट आई थी। उसे नीद नही आ रही थी पर फिर भी एक अजीब-सा भारीपन वह अनुभव कर रही थी। उसके तन और शायद मन पर भी एक अकारण निष्क्रियता छाई हुई थी। वह अवसाद नही था ! बस, थी एक बोझीली थकान जैसी कोई चीज !

तभी भिड़े हुए दरवाजे को ठेलते हुए रजनी तुहिन को लेकर आई। कुछ खीज और कुछ लाड-भरे स्वर मे उसने कहा, "अम्मा जी, सम्हालिए अपने लाडले को। परेशान कर मारा। कल रात-भर तो जगाया ही है, अब दोपहर को भी सोने नही दे रहा है।"

तुहिन को सावित्री के पास लिटाकर, चप्पल फटकारती हुई रजनी अपने कमरे की तरफ चली गई। सावित्री तुहिन के गदबदे शरीर को थपकने लगी। बच्चा पैर फटकारते हुए उसके हाथ में खेलने लगा तो उसे थोड़ा हलका लगा।

उसने सोचा कि अब तो उसे वर्षा के बाद की तलैया की तरह भरा-भरा होना चाहिए था। ऐसी बात तो है नही कि वह प्रसन्न और सन्तुष्ट नही है। यहां जो कुछ है वह उसे अपना लगता है—नितान्त अपना। विगत दिनों मे वह सारे मोर्चों पर जीती थी। किन्तु मालूम नही वह कौन-सी रिक्तता थी जो उसे सालती रहती थी। प्रसन्नता से प्रकाशित अपने हर क्षण मे वह झांककर देखने का प्रयास करती है कि आखिर वहां, किस दरार मे कौन-सी कलौंस रह गई है।

...उपसडक की तलाश...

जब आदमी दिग्भ्रमित हो जाय या राजपथ गड्ढों से भरा हुआ हो तो उपसडक पर चलना या तो विवशता है या जिजीविषा। जब नलिनी ने यह प्रस्ताव रखा था कि संदीप की कोर्ट मैरेज आगरा मे ही करा दी जाय तो यही लगा था कि दूर पर एक एक पगडण्डी दिखलाई पड़ रही

है। पगडंडी अपरिचित थी फिर भी उसमें आत्मीय आकर्षण था। सबकी चिन्ता यही थी कि डाक्टर की प्रतिक्रिया क्या होगी। चिन्ता तो सावित्री को भी थी लेकिन नलिनी जो कुछ प्रस्तावित कर रही थी वह उसके अनुकूल था।

यह सोचकर उसे कुछ अजीव जरूर लगा रहा था कि घर से दूर छिपकर लड़के की शादी की योजना वह बना रही है। यह तय नहीं था कि डाक्टर विरोध करते ही। सत्य तो यह था कि वह जानती ही नहीं थी कि डाक्टर किस तरह सोचते। वच्चे भी नहीं जानते थे। इस बात की चिन्ता उसे नहीं थी कि डाक्टर की प्रतिक्रिया क्या होगी। यह उसके जीवन का अपना रहस्य था कि उसके हाथों दीवार पर टंगी डाक्टर की तस्वीर ही नहीं टूटी थी वल्कि उसके अन्दर की भी तस्वीर टूट गई थी। कोई नहीं जानता था कि उसे रिश्तों के उन टुकड़ों में कोई दिलचस्पी नहीं रह गई थी। उसे लगने लगा था कि जो टुकड़े लगातार गड़ते रहे हों उनके प्रति किसी तरह का मोह पालने में कोई सार नहीं है। पर यह सब कुछ कहना और शायद स्वीकार करना भी सहज नहीं था। ···रिश्तों के सम्वन्ध में स्पष्ट स्वीकारोक्ति क्या सचमुच कोई कर सकता है? ···उसे लगता रहा था कि इस क्षेत्र में शुद्ध शाब्दिक अर्थ में ईमानदारी सम्भव नहीं है। आपसी निर्भरता का सामाजिक तकाजा, शिष्टाचार और उससे भी कहीं वढ़कर सभ्यता की अनिवार्य शर्तों के रूप में प्रचलित सिद्धान्त मनुष्य के हृदय पर कितने ही नकली आवरण चढ़ा देते हैं। कितनी ही वार सम्वन्धों की विडम्वना और व्यर्थता को समझकर भी आदमी शायद दूसरों से अधिक अपनी ही दृष्टि में शिष्ट और सुसंस्कृत वनने के लिए, उसके वोझ को ढोता ही रहता है। जिनका जीवन वहुत सुख से वीता है वे भी शायद कई वार अपनी विरक्ति को छिपाकर प्रेम का नाटक करने के लिए वाध्य होते हैं। मन में घुमड़ने वाले खीझ, आक्रोश और कभी-कभी घृणा के काले वादलों की छाया को आँखों में न पड़ने देने के प्रयास में कितनी ही वार उनकी माथे की नसें तड़की होंगी।

जिस दिन आपसी सम्बन्धों की स्पष्ट और ईमानदार स्वीकारोक्ति प्रारम्भ होगी उसी दिन से मानवीय सम्बन्ध सूत्रों के मृत होने की प्रक्रिया भी प्रारम्भ होगी। शायद जीने के लिए मनुष्य यह भरम पाले हुए है।

उसके लड़कों ने भी उस रिश्ते को करीब-करीब अस्वीकार कर दिया था जिसे उसने नकारा था। किसी न किसी से कुछ कहा नहीं था बल्कि सभी कहने से बचते थे। एक ही हमाम मे सब नंगे थे, इसलिए सभी ने आँखें बन्द कर लेने की शिष्टता का निर्वाह किया था। पर एक ही अनुभव समान रूप से जी लेने के कारण सभी मे एक नई प्रकार की आत्मीयता का उदय हो गया था। तब उसे लगा था कि खून के रिश्ते ही आत्मीयता का सबसे बडा माध्यम नहीं हैं।

आगरा आकर उसे पहली बार लगा था कि अपने घर की अवधारणा ईंट-सीमेन्ट की बुनावट से जुड़ी न होकर परिवेश मे अपनी स्थिति के अहसास से जुड़ी होती है। ऐसा तब भी लगा था जब वह रजनी को लेकर इस विचार से रायपुर गई थी कि अवसर निकालकर डाक्टर को संदीप के विवाह के विषय मे बतला देगी। तब कुछ ही दिनो मे उसे लगा था कि वह अपने कहलाने वाले घर मे निपट मेहमान है। वह उस मेहमान की तरह रही जो आतिथ्य की सुविधा के अनुसार सकोच से रहता है और अपने मन की कोई बात खोलकर नहीं कहता।

उसने स्पष्ट देखा था कि रिश्तों की दरारें और फैलती जा रही थी। उसके मन मे कोई कचोट नहीं हुई थी। इस बात की भी नहीं कि ऐसा अनुभव करके भी वह अस्थिर क्यों नहीं हुई थी! गहराती हुई दरार के किनारे खड़े होकर उसने अपने-आपको आश्वस्त कर दिया था कि समय के साथ सब ठीक हो जाएगा। डाक्टर को कभी न कभी मालूम हो ही जायगा। क्या जरूरी है कि सब कुछ तुरन्त बतलाया जाय? अपने ठुनकते और रूठते हृदय को उसने बहलाया था'''तुम तो राजा बेटे हो न। तुम जानबूझकर थोड़े ही ऐसा कर रहे हो। मौका ही नहीं मिला। है न?

'''फैलती दरार में'''

आलोक ने अपने स्वभाव के अनुकूल गम्भीर और शान्त स्वर में बतलाया था, "लड़की बंगाली है। सोमा नाम है।"

आलोक छुट्टियों में घर आया था। 'घर' शब्द का उच्चारण करते हुए अब उन सभी के मन में रायपुर के घर का नहीं बल्कि आगरा के घर का चित्र उभरता था। आलोक वैसे ही अधिक नहीं बोलता था पर उस बार तो वह और भी चुपचाप था जैसे कोई बात उसके मन में घुमड़ रही थी। दूसरे दिन शाम को चाय के समय उसने बिना किसी लम्बी भूमिका के, विवाह के लिए अपनी पसन्द की घोषणा करते हुए शान्त स्वर में कहा था, "लड़की बंगाली है। सोमा नाम है।"

कुछ देर तक सनाका जैसा खिंच गया था। किसी को समझ में नहीं आया था कैसी प्रतिक्रिया व्यक्त करनी चाहिए। जाने क्या बात थी कि वातावरण में सहजता नहीं है। संदीप की शादी के विषय में जब पहली बार घर में चर्चा हुई थी तो कुछ भी अटपटा नहीं लगा था बल्कि सभी के मन में एक उत्साह था कि हमारे एकरस जीवन में कुछ नवीन घटित होने वाला है। केवल डाक्टर को उस घटना में हिस्सेदार बनाने या ना बनाने की ही खींचतान मन में थी। किन्तु इस बार तो जैसे सभी मन में एक ही रहस्य से इस कदर बोझिल थे कि और कोई बोझ लादने के लिए वे शक्ति संचय नहीं कर पा रहे थे। अनिश्चय से भरी हुई चुप्पी आलोक को अटपटी लगी थी। उस ठंडे वातावरण में हरारत भरने का प्रयास नलिनी ने किया था, "वाह भइया। अब अपना घर कास्मोपालिटन हो जायगा।"

सावित्री की तरह शायद अन्य लोग भी अपने-अपने हृदय की क्षमता को कोस रहे थे। नलिनी की बात पर उत्साह प्रकट करते हुए सभी हँसे थे। सायास और थोपी हुई हँसी। एक-दूसरे को चोर-निगाहों से देखकर सभी लोग इधर-उधर देखते हुए अस्फुट स्वर में बुदबुदाने लगे—वाह, अच्छा तो है। आलोक की ओर कोई भी नहीं देख रहा था। आलोक को भाँपने में समय नहीं लगा था और उसने अपनी सन्तुलित आवाज में

कहा था, 'लगता है मेरी बात पसन्द नहीं भाई तुम लोगो को।"

"पसन्द क्यो नहीं भाएगी !" उसने ही कोमलता से कहा था, "घर मे एक और बहू आ जायगी मुझे तो आराम मिलेगा।"

"हाँ माँ जी···दो बहुएँ हो जाएँगी अब," रजनी ने कहा था। रजनी की आवाज मे हलका-सा व्यंग्य भी था।

उस बेहद सूक्ष्म व्यंग्य का आभास पाते ही संदीप स्थिति को सहज बनाने के प्रयास मे हँसते हुए बोला, "चलो भई, आलोक ने हमारी परम्परा को आगे तो बढाया।"

"दूसरी परम्परा को भी आगे बढाएँगे क्या ?" रजनी की आवाज का व्यंग्य इस बार पूरी तरह उभर आया था। संदीप हड़बड़ा गया था और कमरे में निस्तब्धता छा गई थी। नीरव रात्रि के सन्नाटे मे तेज आवाज मे अचानक ही घर की सांकल बजने के बाद जिस तरह निस्तब्धता और भी घनीभूत हो उठती है और नींद से हड़बडाकर उठा हुआ व्यक्ति, धड़कते हृदय को सम्हालकर और अंधेरे मे आँखें फाडकर देखते हुए उस-नींदे मस्तिष्क पर जोर डालकर समझने का प्रयास करता है कि क्या हो गया···ऐसी ही दशा मे वे सब बैठे रह गए थे। जिस बात को बोलना तो दूर, सोचने से भी सभी कोई कतरा रहे थे वह अपने सम्पूर्ण विद्रूप के साथ सामने आ गई थी।

सावित्री को याद आया कि संदीप की कोर्ट मैरेज आगरा मे हो ऐसा प्रस्ताव जब नलिनी ने रखा था तो उसके मन मे लड़के और बहू को लेकर अपनी निजी दुनिया बनाने की ललक भर नहीं थी बल्कि मन की अंधेरी और पथरीली गुफा में कोई नागफनी का पौधा भी फन काढ रहा था। समय के साथ नागफनी का वह पौधा बढ़ता गया था और उसके कांटे आखिरकार उसको ही चुभे थे। डाक्टर तो उस चुभन से बिलकुल अलग-थलग थे···अपनी शोध की दुनिया में लिप्त। मीलों दूर रहकर भी डाक्टर की अदृश्य उपस्थिति का दबाव घर-भर में लोगों पर था। उस दिन रजनी के व्यंग्य-भरी प्रश्न के बाद भी लग रहा था कि डाक्टर बगल

के ही कमरे में बैठे हैं और घर का हर सदस्य सोच रहा था कि उस रहस्य को उन पर किस तरह प्रकट करे।

संदीप की शादी···तुहिन का जन्म···और आलोक की शादी। परत-दर-परत दूरी और बेगानेपन को लादकर सावित्री हाँफने लगी थी। खामोशी संदीप ने तोड़ी थी, "शादी यहीं हो जाए माँ···अपने पापा को बतला देंगे फिर।"

"हाँ···समय आएगा तो सब मालूम हो ही जाएगा उन्हें।" सावित्री ने कमजोर स्वर में कहा था हालाँकि उसका अनुभव यह था कि निरन्तर प्रवहमान समय को पकड़ने का उसने बार-बार प्रयास किया था पर वह उसके हाथों से किसी चिकनी चीज की तरह फिसल गया था।

"घर की पहली शादी के विषय में बतलाने का समय तो अभी तक आया नहीं है और अब···"

"अब एक साथ ही बतला देंगे", रजनी की बात को काटकर संदीप ने कहा था।

"ठीक तो है माँ, आलोक भइया की शादी यहीं आगरा में कर दी जाय।" नलिनी ने कुछ कहने के लिए ही कहा था।

"पर आलोक भाईसाहब, जब हमारी देवरानी तुमसे रायपुर चलने के लिए कहेगी तो क्या उसे भी ले जाकर कमला मौसी के यहाँ छिपाकर रखोगे?" रजनी ने तीखा मजाक किया।

"तुम तो बस, कभी-कभी एकदम ऊलजूलल बातें करती हो।" अचानक ही संदीप ने गुस्से से भड़ककर कहा।

"हाँ, आपकी बात ही हमेशा ठीक होती है ना।" रजनी ने भी फुंफकारकर कहा और झटके से उठकर अपने कमरे में चली गई।

सभी सामने की ओर देखते हुए दीवारों का पूरा लाभ उठा रहे थे। आलोक अपने कप को एक चम्मच की ठोकर से बजा रहा था।

···जिस फैलती दरार के कगार पर सब खड़े थे वे भसक रहे थे। सहारे के लिए टटोलते हाथों की मुट्ठियों में मात्र शून्य हासिल था।

सम्मेलन में डाक्टर मेहता ने मायोकार्डियल इनफार्कशन पर पेपर पढ़ा था। मानव शरीर के नाजुक राजकुमार दिल की कारोनरी धमनियों के पुनर्जीवन की सम्भावना पर उनके द्वारा पढ़े गए विचारोत्तेजक शोध पत्र की समाप्ति पर सभाभवन तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज गया था।

बंबई में आयोजित सम्मेलन की उस गोष्ठी के बाद, कारीडोर में डाक्टर बधाई देने वालों से घिर गए। उनके ओठों में सिगरेट फँसी थी और वे छोटे-छोटे कश ले रहे थे। हाथ मिलाने वालों से थैंक यू···थैंक यू कहते-कहते वे ऊब गए थे किन्तु इस ऊब के साथ ही साथ कहीं गहरा आत्मसन्तोष भी उनके मन में था। उनके अन्तर का शोधार्थी अपने सूक्ष्म विश्लेषण को प्राप्त विद्वानों के समर्थन से अपने को कर्म के मैदान में अधिकाधिक तीव्र दौड़ने के लिए प्रेरित अनुभव कर रहा था। अपनी ऊब और प्रसन्नता के कोई भी लक्षण उन्होंने अपने चेहरे पर नहीं आने दिए थे। चेहरे पर था एक शिष्टाचार का भाव और ओठों पर आधुनिक युग की हर परिस्थिति से जूझने का छोटा किन्तु अमोघ अस्त्र···थैंक यू।

जब भीड़ कुछ कम हुई तब एक सज्जन ने हार्दिक प्रसन्नता से डाक्टर मेहता का हाथ थाम लिया, "फैंटास्टिक डाक्टर, रियली वण्डरफुल। लेट मी इन्ट्रोड्यूज माई सेल्फ। आई एम डाक्टर पी० के० सेन।"

"ओह! डाक्टर सेन!!" डाक्टर मेहता का चेहरा पहली बार आन्तरिक प्रसन्नता से आलोकित हो गया, "इट्स रियल प्लेसर टू मी यू।" भारत में पहला सफल हृदय प्रतिरोपण करने वाले डाक्टर सेन के हाथ को अपनी दोनों हथेलियों में मुट्ठी में बाँधकर डाक्टर मेहता कारीडोर के एक तरफ हो गए, "आपके विषय में मैंने पढ़ा था। तभी से आपसे मिलने की इच्छा थी।"

"आपका पेपर इस कान्फ्रेंस की उपलब्धि है डाक्टर। इसमें आपने कुछ बिलकुल ही नई बातें कही हैं। आप इसे ब्रिटिश मेडिकल जरनल में भेजिए।"

"हाँ, सोच तो रहा हूँ।"

"ब्रिटिश जरनल ग्राफ सर्जरी के पिछले अंक में डाक्टर डेंटल कूली के नये ग्रापरेशन के विषय में पढ़ा आपने ?"

"हां, यहां आते हुए ट्रेन में ही पढ़ा था।"

"आपके शोधपत्र से ऐसा लगता है डाक्टर कि आप हृदय प्रति-रोपण के पक्ष में नहीं हैं।" डाक्टर सेन ने पूछा।

"जी···बात दरअसल यह है···" डाक्टर दूसरी सिगरेट जलाने के बहाने थोड़ा रुके, "आप ही बतलाइए ना, मानव शरीर दूसरे के अवयव को रिजेक्ट नहीं कर देता ? सफल आपरेशन के बाद भी आपका मरीज कितने दिन जिया था ? डाक्टर बर्नार्ड का सफलतम आपरेशन भी मरीज को कुल कितने दिन तक जिला सका ?"

"पर क्या किसी भी पद्धति की प्रारम्भिक असफलता उसे अस्वीकृत करने के लिए काफी छोटा आधार नहीं है ?" डाक्टर सेन ने भौंहें ऊंची कीं।

"नहीं डाक्टर, मैं पद्धति को अस्वीकृत नहीं करना चाहता। मैं तो केवल यह कहता हूं कि मानव-शरीर विदेशी अवयव को क्यों अस्वीकार करता है, इसके कारण को सही तौर पर समझने तक हमें सब्र करना चाहिए। और···और···फिर नैतिक और कानूनी प्रश्न भी तो है।"

"नैतिक और कानूनी प्रश्न तो समय के साथ परिवर्तित होते हैं। वैसे भी मृत्यु की परिभाषा तो आदमी को कभी न कभी बदलनी ही पड़ेगी। चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में जिस गति से उन्नति हो रही है उससे तो यही लगता है।" डाक्टर सेन थोड़ा रुके, "तो आप क्या बाई-पास ग्राफ्टिंग से ही सन्तोष कर लेना चाहते हैं ?"

"नहीं डाक्टर···उससे भी एक कदम आगे जाना होगा तभी इस समस्या का समाधान हो सकेगा। कारोनरी धमनी···"

"हलो डाक्टर मेहता," डाक्टर की बात अधूरी ही रह गई। उन्होंने पलटकर देखा कि एक जमाने के उनके सहयोगी और अब मिशन अस्पताल आगरा के इंचार्ज डाक्टर वाल्टर उनकी तरफ हाथ बढ़ा रहे थे।

"डिस्टर्ब नहीं करूँगा। मैं तो बस बधाई देने के लिए रुक गया था," डाक्टर वाल्टर चौड़ी मूँछों के नीचे होंठों को थोड़ा-सा एक ओर खींचकर मुस्कुराये।

"ओ···डाक्टर वाल्टर!" डाक्टर मेहता ने खुश होकर कहा। "अच्छे तो हैं? कभी संदीप से भेंट हुई?"

"हाँ···हाँ, एक बार मिलने आया था। नाइस ब्वाय। फिर एक बार और रास्ते में ही उससे और उसकी वाइफ से भेंट हो गई थी।" डाक्टर वाल्टर ने आगे निकल गये अपने कुछ मित्रों की ओर व्यग्रता से देखकर उन्हें थोड़ा और रुकने का इशारा किया।

डाक्टर मेहता ने माथे पर बल डालकर कुछ परेशानी में कहा, "संदीप···और उसकी···वाइफ!"

"ओ के डाक्टर, इस समय जल्दी में हूँ। सी यू।" डाक्टर वाल्टर ने हाथ उठाकर अभिवादन किया और जल्दी-जल्दी आगे बढ़ गये। डाक्टर मेहता आँखें सिकोड़े, परेशान नजरों से उनकी ओर देखते रहे।

"···हाँ तो आप कारोनरी धमनी की बात कह रहे थे," डाक्टर सेन ने उखड़ी हुई बात को पुनः रोपा।

डाक्टर मेहता ने कन्धे उचकाये, नई सिगरेट सुलगाई और फिर उनकी तरफ देखा। विषय की डोर पकड़कर वे पुनः चर्चा की गहराई में उतरने लगे। आस-पास के मानवीय संसार का आभास उनसे दूर होता गया।

अनुसन्धान की प्रक्रिया का अन्त नहीं है।

ब्रिटिश जरनल आफ सर्जरी में आस्ट्रेलिया के हड्डी विशेषज्ञ डाक्टर डेनिस पैटर्सन द्वारा विकसित अद्युनातन शल्य चिकित्सा-पद्धति के विषय में पढ़कर डाक्टर मेहता ने सोचा कि अपंग बच्चों के संघ के इस अध्यक्ष की खोज से सचमुच ही विश्व के अपंगों को एक नया जीवन मिलेगा। विद्युत प्रवाह के द्वारा विकृत हड्डी में सुधार करने का जो प्रयोग आज डाक्टर पैटर्सन कुत्तों पर कर रहे हैं कल वह वस्तु मानवता के लि

वरदान बनकर कितने ही लुंज-पुंज होते मानव शरीरों को शक्ति की संजीवनी पिला सकेगा।

शरीर संस्थान और मानसिक शक्ति के संयोग से खड़े मानव व्यक्तित्व का सन्तुलन ही सभ्यता का चरम उत्कर्ष हो सकता है। मानव की मेधा, ज्ञान और शक्ति का सर्वाधिक सार्थक उपयोग यही हो सकता है कि कोई भी मानव शरीर त्रस्त, कमजोर और लुंज-पुंज न हो। कितनी बड़ी ट्रेजडी है कि प्रखर विवेक का स्वामी होकर भी कोई मनुष्य केवल अपनी शारीरिक अक्षमता के कारण अपने जीवन का पूर्ण विकास और उपयोग न कर सके। फिर उसकी क्षमता काल के हाथों यूँ ही समाप्त हो जाती है। अब तक की सभ्यता के इतिहास का बहीखाता यदि तैयार किया जाय तो मालूम हो कि ना जाने कितनी क्षति समाज ने सही है। यह क्षति भी अपूरणीय है क्योंकि बिलकुल उन्हीं सम्भावनाओं से युक्त दूसरा मनुष्य कभी-कभी पैदा नहीं हो सकता। प्रकृति के कलाकार हाथों ने हर आदमी को अद्वितीय और मौलिक बनाया है। डाक्टर मेहता जरनल को बगल की टेबिल पर रखकर सिगरेट की धुएँ में खो गए।

सिगरेट खत्म होने पर डाक्टर चौंके। क्या सोच रहे थे वे ? बीमारियों, कष्टों और मानव-जीवन के अभावों की बात सोचते-सोचते उनका चिन्तन आखिर कहाँ खो गया था। यह जानकर उन्हें आश्चर्य हुआ कि विगत क्षण उनकी मानसिक शून्यता के क्षण थे। चिन्तन की जिस डोर को वे पकड़े हुए थे वह जाने कब छूट गई थी और वे किसी अनजानी गहराई में गर्क हो गए थे।

घर में पसरे हुए सन्नाटे में मनहूसियत थी। यह अनुभव करके डाक्टर कुछ और परेशान हो उठे। आज ही ऐसा क्यों अनुभव हो रहा है ? एकाकीपन तो घर में बहुत दिनों से है किन्तु वह बाह्य वातावरण तक सीमित रहने वाला मात्र एक स्थितिबोध ही था। बर्फ की तरह पिघलकर आत्मा के अन्दर रिसने वाला तत्त्व नहीं।

'''यह तो एक मानसिक विचार है। प्रारम्भ से ही डाक्टर की यह मान्यता थी कि सार्थक कर्म में लगा हुआ मस्तिष्क इससे व्यस्त नहीं होता किन्तु उनका मस्तिष्क तो अभी व्यस्त था! अपने इस तरह भावुक हो उठने पर उन्हें झुँझलाहट हुई। यह व्यक्तित्व का सतहीपन है'''और इससे जीवन में क्या सधने वाला है।

घर में फैली खामोशी के उपरान्त भी बाहर के वातावरण में व्याप्त जीवन्तता का आभास उन्हें हुआ। बाहर कहीं कुछ ऐसा था जो सम्पूर्ण परिवेश में उत्सवधर्मिता का रंग भर रहा था। दूर कहीं फटाका फूटने की आवाज आई तो डाक्टर को याद आया कि आज तो धनतेरस है।''' उन्होंने अलसायी आँखों से खिड़की की ओर देखा। मौसम की कोमलता ने उनका ध्यान खींचा। कमरे के भीतर से भी बाहर खिली चमकीली किन्तु नर्म धूप का अहसास हुआ। दोपहर के तन्द्रिल वातावरण को इधर-उधर खेलते हुए बच्चों की आवाजें झकझोर रही थीं। इन आवाजों ने भी डाक्टर का ध्यान आकृष्ट किया तो उन्हें फिर लगा कि इस तरह की नितान्त अर्थहीन बातों में उनका मन क्यों उलझ गया है।' 'शायद यह चाय की तलब हो।'''उन्होंने सोचा कि रामचरण को पुकारकर चाय लाने के लिए कहें किन्तु फिर उन्होंने इरादा बदल दिया।'''सोचा क्यों न जानकीप्रसाद के यहाँ चलकर चाय पी जाय। रविवार है'''वे घर पर ही होंगे।

कपड़े बदलकर डाक्टर बाहर आए। ऋतु परिवर्तन की महीन प्रक्रिया उनकी आँखों से नहीं छिपी। यह सही है कि ऋतुओं का प्रभाव गाँव-कस्बों और दूरदराज के फैलाव युक्त प्राकृतिक लैंण्डस्केप पर स्पष्ट दिखलाई पड़ता होगा किन्तु शहर के एकरस चरित्र की जड़ता को भी, यदि वह भंग नहीं कर पाता तो स्पर्श तो अवश्य ही कर लेता है। डाक्टर ने गौर किया कि कार्तिक माह के प्रभाव से शहर का वातावरण भी बच नहीं पाया था। कम्पाउण्ड में जीनिया और चँदेनी गेंदा का उजास फैला हुआ था। मौसम गुलाबी हो नहीं पाया था किन्तु उसमें गुलाबीपन

का पूर्वाभास होने लगा था।···आसपास के मकान दीवाली के पर्व के लिए लमककर तैयार थे। गाड़ी स्टार्ट करते हुए डाक्टर ने गौर किया कि इनका मकान दूसरे मकानों के मुकाबले धुँधला और दीन दिखलाई पड़ रहा था। इस सम्बन्ध में ना सोचने का प्रयास करते हुए डाक्टर ने गाड़ी की रफ्तार बढ़ा दी।

जानकीप्रसाद के घर के सामने गाड़ी रोककर गाड़ी की चाबी निकालते हुए डाक्टर को दिखलाई पड़ा कि जानकीप्रसाद का घर त्योहार के लिए सज-सँवरकर तैयार हो गया था। ड्राइंग रूम का दरवाजा खुला था।···यानी लोग सोए हुए नहीं थे और सम्भवतः बैठक में ही थे। बैठक में घुसते हुए डाक्टर ने देखा कि सोफे के बीच का सेन्टरपीस हटाकर सभी कोई दरी पर आलथी-पालथी मारकर बैठे हुए थे। कमला धनतेरस की पूजा के लिए आटे के दीये बना रही थी। जानकीप्रसाद और राजेश बीच में रुई की पूनियाँ रखकर पूरी गम्भीरता से दीयों के लिए बत्तियाँ बनाने में जुटे हुए थे।

यह देखकर डाक्टर को कैसा तो लगा।···अच्छा या अटपटा,··· सहज या असाधारण!···वे समझ नहीं पाए तो भौंहें चढ़ाए हुए कुछ क्षणों तक उस दृश्य को इस तरह निहारते रहे जैसे कोई टूरिस्ट अजनबी वातावरण को देखता है। अपनी इस मुद्रा को भंग करने के लिए ही उन्होंने हड़बड़ाकर जेब से सिगरेट निकाल ली। उन्हें देखकर जानकी-प्रसाद और कमला ने एक साथ कहा, "आइए···आइए।"

आखिरी बत्ती भाँजकर एक ओर रखते हुए जानकीप्रसाद ने कहा, "आज भर दोपहरी में कहाँ निकल पड़े?"

"···बस यूँ ही। चाय पीने की इच्छा हुई तो सोचा कि आपके यहाँ चलकर ही पी ली जाय।" डाक्टर ने किनारे के सोफे पर बैठते हुए कहा।

"वाह, आपने बहुत अच्छा किया। आपके बहाने हमें भी चाय मिल जाएगी। डेढ़ घंटे से काम कर रहे हैं। इनके लिए दीयों की बत्तियाँ बनाते-बनाते थक गए।" जानकीप्रसाद ने अपने पीछे सोफे से टेक लगाते

शादियाँ हुई होतीं ग्रौर···वहुएँ होतीं···ग्रौर···यानी कि सव एक जगह होते तो दीवाली का ग्रानन्द ग्राता।"

डाक्टर खामोशी से कमला की ग्रोर देखते रहे। कमला ने जैसे सहायता की याचना करते हुए एक वार पति की ग्रोर देखा, फिर कहा, "ग्रच्छा···मैं चाय ले ग्राती हूं।" वह जल्दी से जल्दी डाक्टर की दृष्टि से परे हो जाना चाहती थी जो उसके चेहरे को कोंच रही थी। वह भीतर के कमरे की ग्रोर वढ़ी ही थी कि डाक्टर की गम्भीर सधी हुई ग्रावाज पीछे से फेंके गए ढेले की तरह ग्राई···ठहरो कमला।"

कमला झिझककर रुक गई। कमला ग्रौर जानकीप्रसाद भावी क्षणों की ग्रनिश्चितता से ग्रातंकित हो गए थे। वे समझ नहीं पा रहे थे कि उन क्षणों का सामना वे किस तरह करेंगे। डाक्टर को सव वतलाना कठिन होगा···ग्रौर उसे छिपाना···सम्भवतः ग्रौर भी कठिन। जानकीप्रसाद ने राकेश से कहा, "दीये की वत्तियाँ तो वन गईं, ग्रव तुम जाग्रो।"

जाते हुए राकेश की पीठ की ग्रोर तीनों देखते रहे। राकेश के ग्रोझल होते ही डाक्टर ने, विशेप तौर पर किसी से नहीं···फिर भी दोनों से ही कहा, "···ये जो लड़के वहू वाली वात है···इसको जरा खोलकर कहो!" स्वर गम्भीर था···खनखनाता हुग्रा···सपाट ग्रौर वस्तुस्थिति की सही पकड़ के लिए व्यग्र।

कमला लौटकर दरवाजे पर ही खड़ी हो गई। वह हंसकर ग्रपने को स्वाभाविक वनाने की कोशिश करने लगी लेकिन वह पूरी तरह नर्वस हो गई थी। उसने जानकीप्रसाद की ग्रोर देखा जो स्वयं भी हड़वड़ाकर कुर्ते के छोर से चश्मा पोंछ रहे थे। उन्होंने वात को सम्हालने के लिए ग्रसफल प्रयास किया, "ग्ररे भाई ···ये तो यूं ही वोल गई होंगी। ग्रापने तो वात ही पकड़ ली विल्कुल।" डाक्टर ने सिगरेट पीते हुए, खामोशी से दोनों को वारी-वारी से देखा। ग्रनकी ग्राँखों में वह पैनापन उभर ग्राया था जो ग्रापरेशन करते समय शल्य चिकित्सक की दृष्टि में होता है···जव वह मानव ग्रवयव की ग्रन्दरूनी सूक्ष्म नसों के वीच

नश्तर घुसाने के लिए तैयार होता है। कमला और जानकीप्रसाद आँखों की उस तीक्ष्णता को सहन नहीं कर पा रहे थे। उनके पास बोलने के लिए कुछ था भी नहीं, इसलिए वे चुपचाप डाक्टर की किसी विस्फोटक प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा भर कर सकते थे। जब चुप्पी का बोझ असह्य हो गया तब डाक्टर ने उसी गम्भीरता से फिर पूछा, "आप लोग छिपा रहे हैं। मैं जानना चाहता हूँ कि क्या संदीप ने शादी कर ली है ?"

कमला किसी तरह अपने को सम्हालकर हँसने का प्रयास करते हुए बोली, "वाह जीजाजी, अपने घर की शादी-ब्याह की बात आप दूसरों से पूछ रहे हैं ?"

डाक्टर ने झटका देकर सिर उठाया, कुछ कहने के लिए ओठ खोले फिर अपने को जप्त कर लिया। जल्दी-जल्दी दो कश लेकर कहा, "हाँ... स्थिति तो यही है।" एक कड़वी मुस्कुराहट ओठों पर उभरी और उन्होंने आँखें उठाई, "....वैसे मुझे इस बात का आभास है।"

जानकीप्रसाद और कमला ने एक-दूसरे की ओर चोरनिगाहों से देखा और अलग-अलग दीवारों की ओर आँखें फेर लीं। डाक्टर ने अपनी बात का असर भाँपा और उन्होंने फिर एक तीर फेंका, "बम्बई की कान्फ्रेंस में आगरा के डाक्टर वाल्टर ने मुझसे जिक्र किया था। वे जल्दी में थे, इसलिए डिटेल नहीं बतला सके। मैं आप लोगों से जानना चाहता हूँ।"

"क्या जानना चाहते हैं ?" जानकीप्रसाद ने पूरी सजगता से डाक्टर की ओर उन्मुख होकर, काफी सावधानी से पूछा।

"संदीप की शादी कहाँ हुई है ?" डाक्टर ने एक शब्द तोलकर पूछा। उन्होंने अनुभव किया कि अपने ऊपर संयम रखना उनके लिए कठिन हो रहा है। यह उनकी इच्छा के विपरीत बात थी। उन्हें लगा कि तथ्यों को स्वीकार करने में आदमी को जितना सहज और भावहीन होना चाहिए, उतने वे अभी हो नहीं पाए थे।

"संदीप की शादी तो...आगरा में ही हुई है।" जानकीप्रसाद ने

हिचकिचाते हुए कहा।

"मतलब कि···आलोक की भी शादी हो गई है।" डाक्टर ने बात पकड़कर तुरन्त कहा।

जानकीप्रसाद अचकचाकर डाक्टर की ओर देखने लगे। डाक्टर के माथे पर ढेर सारी रेखाएँ उभर आई थीं और उन्होंने अपनी आदत के विरुद्ध करीब आधी सिगरेट ऐशट्रे में मसल दी थी। जानकीप्रसाद को मालूम था कि बात अभी पूरी तरह हाथ से नहीं निकली थी पर वे तय नहीं कर पा रहे थे कि इस सम्बन्ध में वे आगे कुछ और बोलें या चुप रहें। वे सोच ही रहे थे कि जब डाक्टर उनकी आँखों में आँखें डालकर यही बात फिर पूछेंगे तब वे क्या कहेंगे···कि इतने में ही कमला ने अचानक दीन स्वर में कहा, "जीजाजी···हमने तो जिज्जी से बहुत कहा था कि ये बात छिपानी नहीं चाहिए···लेकिन···"

"तुम्हारी जिज्जी ऊँह···खैर, तो आलोक ने चिरमिरी में ही की है शादी ?"

"शादियाँ तो दोनों ही आगरा में हुई हैं लेकिन आलोक की ससुराल चिरमिरी में है। सन्दीप की दुलहन गुजराती है और आलोक की बंगाली।"

"हूँ···" डाक्टर ने गम्भीरता से कहा।

कमला से उन्हें सान्त्वना जैसे देते हुए कहा, "बहुएँ दोनों ही अच्छी हैं।"

"यह सब हुआ होगा तुम्हारी दीदी की शह पर। मैं क्या लड़कों को शादी करने से रोकता था।"

डाक्टर के स्वर में शिकायत थी या उमड़ता हुआ रोष···कमला अनुमान नहीं लगा पाई क्योंकि डाक्टर के चेहरे की ओर देखने का साहस वह अभी तक जुटा नहीं पाई थी। बहन की वकालत करती हुई-सी उसने कहा, "वैसे जब जिज्जी यहाँ आई थीं तब आपको बतलाना चाहती थी पर बतला नहीं सकी होंगी।"

"क्यों···क्या दिक्कत थी ?" डाक्टर ने फूलती साँसों के बीच पूछा ।

"आप शायद बहुत व्यस्त थे या फिर···"

"ये सब तो आफ्टर थाट्स हैं," खनकती आवाज में डाक्टर ने कहा । उत्तेजना में उनका चेहरा और भी गोरा दिखलाई पड़ रहा था, "तुम्हारी जिज्जी ने जानबूझकर भड़काया होगा लड़कों को ।"

"यह भी हो सकता है ।"

"और क्या हो सकता है ? यह सब बतलाने में कितना समय लगता है । उस नालायक औरत को मेरी कोई चिन्ता नहीं है । उसको तो··· उसको तो···गोली से उड़ा देना चाहिए ।"

"वैसे जीजाजी, आप और आपकी बीवी के बीच किसी को भी शायद बोलने का अधिकार नहीं है । मगर जब आप मेरी बहन के लिए इतनी बड़ी बात कह रहे हैं तो बोलना जरूरी हो जाता है ।" कमला भी आवेश से हाँफने लगी, "आपने अपने बीवी-बच्चों की चिन्ता कब की है ? उनके साथ आत्मीय सम्बन्ध कब रखे हैं ? क्या खाने और कपड़े का इन्तजाम करके ही परिवार वालों के प्रति कर्तव्य पूरा हो जाता है ? सच तो यह है कि आपके घर में जिज्जी का जीवन कालेपानी की सजा की तरह बीता है । फिर भी नालायक वही हैं ! गलती उन्हीं की है !!"

"कमला···", जानकीप्रसाद ने टोकने की कोशिश की ।

डाक्टर विस्फारित नेत्रों से कमला की ओर देखते हुए आवेश में खड़े रह गये । आज तक अपने व्यक्तिगत जीवन की लक्ष्मण-रेखा में किसी को भी घुसने की अनुमति उन्होंने नहीं दी थी । कमला उनकी उस मुद्रा से अप्रभावित रही । भीतर की ओर मुड़ते हुए उसने फिर कहा, "आपकी तरह व्यस्त लोग दुनिया में और भी हैं पर उनका दिल जड़ नहीं हो गया है । संदीप भी तो डाक्टर है, इसका मतलब यह थोड़े ही है कि अपने लड़के को प्यार करने के लिए वह समय ना निकाल पाये ।"

कमला मुड़कर झटके से अन्दर चली गई और डाक्टर धम्म से कुर्सी पर बैठ गए । उन्हें लगा कि उनके पैरोंतले से ठोस जमीन किसी

ने खींचकर निकाल दी है। जानकीप्रसाद समझ नहीं पाए कि उन्हें क्या करना चाहिए। सहानुभूति का प्रदर्शन भी एक खतरा था। डाक्टर के भीषण भावावेश से उनका सावका पहले पड़ चुका था, इसलिए वे छाछ भी वार-वार फूंक लेना चाहते थे।

"देखते हैं जानकीप्रसाद जी, मेरे लड़कों की शादियां हो गईं, लड़के का लड़का भी हो गया और मुझे कुछ भी पता नहीं है। इसका सिवाय इसके क्या मतलव हो सकता है कि ये वातें मुझसे जानबूझकर छिपाई गईं। फिर भी···फिर भी कमला मुझे ही दोषी मान रही है।" डाक्टर ने अजीव स्वर में कहा, "आप वतलाइए, यह मेरे साथ अन्याय नहीं है ?"

जानकीप्रसाद चुप वैठे थे···चुप···और···सावधान।

"मैंने अपने परिवार वालों की हर सुविधा का ध्यान रखा। वस एक साधारण रूमानी आदमी की तरह लोगों के आगे-पीछे नहीं घूमा, इसलिए क्या दूसरों को यह अधिकार मिल जाता है कि मुझे इस तरह अपमानित कर सके ? वोलिए ? वोलिए न, इस षड्यन्त्र में कहीं न कहीं आप भी तो शामिल थे।" डाक्टर के स्वर में क्रोध की हलकी आंच सुलगने लगी थी।

"मुझे तो लगता है डाक्टर कि आपने ही अपने विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा था जिसका पता आपको आज जाकर लगा।" जानकीप्रसाद ने शान्त स्वर में कहा।

"क्या मतलव ?"

"आप यह क्यों नहीं समझ सके कि आदमी मात्र शोध का विषय नहीं है। उसके जीने के लिए केवल शरीर के दायरे में आई आवश्यकताएं ही काफी नहीं हैं। आदमी के रिश्तों के कोमल तन्तु किसी माइक्रोस्कोप से नहीं देखे जा सकते जवकि आदमी के व्यक्तित्व को वनाने में इसका भी हाथ है।"

"यह लफ्फाजी उनके लिए है जिन्हें जरूरत से ज्यादा फुरसत है। दुनिया में काम करने के लिए···"

"'''मैं मतलब समझ रहा हूँ डाक्टर। बेशक आदमी का पहला कर्तव्य संसार के प्रति है पर दूसरे नम्बर पर तो आप परिवार को रख सकते हैं। जब तक बहुत बड़ी दुविधा ना आ जाय तब तक दोनों के ही प्रति कर्तव्य निर्वाह हो सकता है। आखिर'''आखिर मानवीय रिश्ते बेमानी तो नहीं हैं।"

डाक्टर ने खामोशी से सुना और सिगरेट जलाई। व्यंग्य की महीन और टेढ़ी मुस्कान के साथ उन्होने कहा, "अब आप रिश्तों को दैवी चमत्कार मानकर उसकी कोई आध्यात्मिक व्याख्या करेंगे।"

"नही डाक्टर, रिश्तों के उलझाव को रहस्यमय दैवी चमत्कार कह-कर दार्शनिकों के हाथों मे नही छोड़ा जा सकता।" जानकीप्रसाद थोड़ा रुककर फिर बोले, "पर उसे मात्र शरीरी समस्या मानकर उसकी भौतिक और वैज्ञानिक व्याख्या भी सम्भव नही है। मनोवैज्ञानिक परिभाषाओं और साहित्यिक किस्म की लफ्फाजियों से भी उसे शायद नहीं समझा जा सकता। आप ही सोचिए, सहज और साधारण मनुष्य बनकर रिश्तों को पहचानना, उन्हें जीना, उनके प्रति संवेदनशील और ईमानदार होना ही क्या आदमियत की परिभाषा नही है?"

कमरे मे घनी चुप्पी छा गई थी। ना तो जानकीप्रसाद डाक्टर की ओर देख रहे थे और ना ही डाक्टर उनकी ओर। कुछ देर के बाद डाक्टर चुपचाप उठे और दरवाजे की ओर बढ गये। जानकीप्रसाद ने गम्भीर स्वर मे कहा, "सुनिए डाक्टर, मेरे ख्याल से आवेश मे कुछ कर बैठने के बदले आपको समझदारी से काम लेना चाहिए।"

डाक्टर क्षण-भर को ठिठके फिर बिना मुड़े बुदबुदाये, "भाड मे जायें सब। मुझे चिन्ता नहीं है।"

'''जब कमला चाय का ट्रे लेकर ड्राइंग-रूम में आई तब तक डाक्टर की कार रवाना हो चुकी थी।

सन्नाटे की सिल के नीचे घर पिस रहा था।

जानकीप्रसाद के घर से लौटकर डाक्टर अपने को स्थिर और शान्त रखने की कोशिश करते रहे। उन्हें सफलता नहीं मिली थी और वे लगातार खीझते रहे थे। घर में घुसकर उन्हें लगा था सन्नाटा प्रतिक्षण गहरा हो रहा था।···अपने कमरे में अपनी प्रिय कुर्सी पर बैठकर उन्हें लगा कि उन्हें जो अजीब-सा खालीपन पिछले दिनों अनुभव होता रहा है कहीं वह सम्पूर्ण वातावरण में निःसंग होने का अहसास तो नहीं है ?···अपने विषय में इस तरह सोचना भी उन्हें बेहद अपरिचित-सी प्रक्रिया लगी।···यह स्वस्थ मन का लक्षण नहीं है। जिन बेहद साधारण-सी चीजों से तटस्थ रहकर उन्होंने कर्मरत् जीवन बिताया था उन चीजों में अपने मन को उलझता देखकर उन्हें बेहद कोपत हो रही थी।

बगल की टेबिल से ब्रिटिश जरनल आफ सर्जरी उठाकर पलटते हैं तो उन्हें लगता है कि सब गड्ड-मड्ड हो गया है। शब्दों के अन्दर से उसके अर्थ निकलकर एक-दूसरे में मिले जा रहे हैं। पृष्ठों को उलटकर वे उसे वैसा ही रख देते हैं। अंक को टेबल पर रखते ही टेबल पर जमी धूल उड़ती है।···दिस ईडियट रामबरन···करता क्या है ये ? अपनी दृष्टि वे कमरे में चारों तरफ घुमाते हैं फिर दरवाजे के उस पार दूसरे कमरे की ओर देखते हैं।···दरवाजे पर पहले परदा रहता था··· अक्सर हलके नीले रंग का।···तो हर चीज़ बेतरतीब है। अपनी जगह से सरका हुआ पलंग···तिरछा रखा हुआ ड्रेसिंग टेबिल।···पन्ने ना उलटने के कारण दीवारों पर टँगे कैलेण्डरों पर बीते हुए महीनों का साम्राज्य। बड़ी आलमारी के पल्ले में लगा हुआ···धूल की परत से बुझा-बुझा-सा आईना।···हर तरफ फीकापन और गर्द ! कमरे की दहलीज से उनकी कुर्सी तक फर्श बने उनके ही पैरों के निशान···एक···दो··· सात···आठ।

इस सम्पूर्ण परिवेश में अपने को स्थित करने का प्रयास वे करते हैं तो उन्हें लगता है कि उन वस्तुओं के बीच वे भी एक वस्तु की तरह ही हैं। उन वस्तुओं के बीच व्यतीत क्षणों की कोई निजी स्मृति यदि है तो

अनाम थिरकन को विशेषज्ञ की सूक्ष्म दृष्टि भी पकड़ नहीं पाती। मानवीय अनुसन्धान उस कसक के सामने वौने पड़ जाते हैं।

बेकार की बात है···डाक्टर मन ही मन बुदबुदाते हैं···भाड़ में जायँ सब। परवाह नहीं करता मैं। इन लोगों की सामूहिक जिद और उपेक्षा के सामने भला समर्पण किया जा सकता है?···यह सब कहीं बढ़ती उम्र के कारण तो नहीं है? वे अपना सर फटककर अपने विचारों को दूर फेंकना चाहते हैं। भावावेश है···यह केवल भावावेश और इस तूफान में सूखे पत्ते की तरह वे नहीं उड़ेंगे। उनकी अपनी निजी दुनियाँ है···खुद की गढ़ी हुई···जिसमें बिना किसी का मोहताज हुए वे जी सकते हैं। वे फिर से जरनल को उठाना चाहते हैं लेकिन फिर वही डाक्टर मेहता फूहड़ ढंग से हँसता हुआ सामने आ जाता है···बच्चा तो आदमी और औरत के शारीरिक संयोग की अनिवार्य परिणति है न? क्यों डाक्टर, फिर तुम्हारी नस क्यों फड़फड़ा रही है···संदीप के बच्चे को देखने के लिए!

डाक्टर झमककर खड़े हो जाते हैं···डैम इट। हाँ···हाँ केवल बच्चे को ही नहीं वे उन लड़कियों को भी देखना चाहते हैं जिनसे उनके लड़कों ने शादियाँ की हैं। उनके पदचापों की आवाज के विना इस घर का मनहूस बर्फीला सन्नाटा नहीं टूट सकता। उन्हें आश्चर्य होता है कि किसी साधारण बाप की तरह उनके हृदय में बेटों की शादी के स्वप्न पल रहे थे!

अपने हाथों को पीछे बाँधकर वे कमरे में इधर-उधर टहलने लगते हैं। आखिर वे चाहते क्या हैं? रुककर सामने के बड़े ड्रेसिंग-टेबिल के आईने में वे अपना प्रतिविम्ब देखते हैं। उन्हें लगता है कि वे काफी बूढ़े दिखलाई दे रहे हैं और उनके चेहरे पर घोर उदासी छाई हुई है।···हो सकता है यह उदासी ना हो···थकान हो।···शायद खाने की असावधानी के कारण विटामिन की कमी।

आश्चर्यचकित होकर वे सोचते हैं कि उनका कौन-सा स्वरूप सत्य